सत्यकाम विद्यालंकार
न-साथी

जीवन-साथी

विवाहित जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए
व्यावहारिक सुझाव जिनसे पति-पत्नी सच्चे जीवन-साथी बन सकें
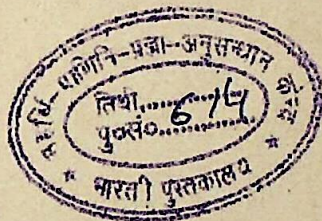
लेखक
सत्यकाम विद्यालङ्कार

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य : चार रुपये पचास नये पैसे
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : यूनाईटड आफसट प्रेस, देहली-६.

भूमिका

प्रकृति ने पुरुष और स्त्री को ही परस्पर जीवन-साथी बनने के लिए बनाया है। दोनों का जीवन परस्पराश्रयी है; दोनों की भावनाएं और दैहिक इच्छाएं परस्पर-पूरक हैं। साथी बनकर ही दोनों का जीवन पूर्ण होता है।

इस नैसर्गिक विधान को निर्बाध बनाने के लिए ही समाज ने विवाह की प्रथा का आविष्कार किया था। किन्तु विवाह स्त्री-पुरुष को वैधानिक साथी देने में ही सफल हो सका है। प्रत्येक पुरुष को पत्नी मिल जाती है और स्त्री को पति मिल जाता है— लेकिन जीवन-साथी लाखों में एक को मिलता है।

जीवनपर्यन्त साथ रहने का प्रण करने से ही हम जीवन-साथी नहीं बन जाते। यह प्रण प्रायः वासना के प्रथम उन्माद में किया जाता है और जीवन-पर्यन्त समाज के अपवाद-भय से निभाया जाता है, स्वेच्छा से नहीं। इसीलिए विवाह के सूत्र स्नेह के नहीं, घृणा के बन जाते हैं और पति-पत्नी जीवन-सखा बनने के स्थान पर जीवन-शत्रु बन जाते हैं।

साधारणतया यह कल्पना की जाती है कि स्त्री-पुरुष की नैसर्गिक कामेच्छा ही दोनों को सफल जीवन-साथी बनाने के लिए पर्याप्त प्रेरणा है। यह भूल है। काम-सम्बन्धी आकर्षण क्षण-स्थायी होता है। कामजन्य इच्छाओं की तृप्ति के बाद वह नष्ट भी हो जाता है। ऐसे क्षण-भंगुर आधार पर आजीवन प्रेम की इमारत खड़ी नहीं हो सकती।

जीवन-साथी बनने के लिए जिस आकर्षण की आवश्यकता है वह दैहिक नहीं, आत्मिक है। दो शरीर नहीं—बल्कि, दो आत्माएं ही जीवन-साथी बन

सकती हैं। स्त्री-पुरुष का प्रथम मिलन केवल दैहिक आकर्षण से भी सम्भव हो सकता है—किन्तु जीवन-भर का साथ उन दोनों की मानसिक या आत्मिक एकरूपता पर ही निर्भर है।

एकरूपता से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि दोनों के शील-स्वभाव में समानता होनी चाहिए; या दोनों का व्यक्तित्व एक-सा होना चाहिए; अथवा यह कि दोनों को एक-दूसरे में इतना मिट जाना या खो जाना चाहिए कि वे एक प्राण दो शरीर दिखाई देने लगें—उनमें एकत्व आ जाए। मैं इस सम्पूर्ण समर्पण को न तो सम्भव ही मानता हूं और न अभीष्ट ही समझता हूं। स्वयं को मिटा देने के इस उपक्रम में मनुष्य प्राय: अपनी सब विशेषताओं को भी मिटा देता है; अपनी स्वतन्त्रता का, अपने व्यक्तित्व का नाश कर देता है। मेरा विश्वास है कि दो स्वतन्त्र आत्माएं ही सफल जीवन-साथी बन सकती हैं; परतन्त्र, समर्पित या विनष्ट आत्माएं नहीं।

स्वयं को नष्ट करने के स्थान पर यदि दोनों एक-दूसरे के विकास में सहायता देने का यत्न करें तो वे अधिक सफल जीवन-साथी बन सकते हैं। जो प्रेम प्रेमी के विकास में सहायक नहीं होता वह प्रेम नहीं हो सकता। जिन दो व्यक्तियों का जीवन एक-दूसरे की वृद्धि और एक-दूसरे के विकास में सहायक नहीं होगा वे जीवन-साथी नहीं बन सकेंगे। क्योंकि जीवन-साथी बनने का कोई भी कार्य विनाशोन्मुख नहीं हो सकता। वह सदा रचनात्मक होगा।

जो स्त्री-पुरुष विवाहित जीवन को सफल बनाने या जीवन-साथी को अनुकूल बनाने के लिए विशेष धारणा-ध्यान-समाधि या जप-तप की साधना करते हैं वे भी भूलते हैं। इसके लिए किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं; केवल सरल सहानुभूतिपूर्ण हृदय और स्वतन्त्र विवेक की आवश्यकता है। भगवान ने ये दोनों चीज़ें साधारण से साधारण स्त्री-पुरुष को दी हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक भय से प्रेरित होकर हम इन स्वगत गुणों को भूल जाते हैं। तब हमारे हृदय और मस्तिष्क विकृत हो जाते हैं। स्वार्थी और रूढ़ियों से बंधे हुए व्यक्ति कभी सच्चे जीवन-साथी नहीं हो सकते।

सहानुभूतिपूर्ण हृदय और स्वतन्त्र विचारशील मस्तिष्क—यही जीवन-साथी बनने के उपकरण हैं। व्यापारिक जीवन की विषमताओं ने हमारे इन उपकरणों को कुन्द बना दिया है। विज्ञान के नये आविष्कार हमें भौतिक

जगत् में बहुत ऊंचा लिए जा रहे हैं—किन्तु हमारा बौद्धिक धरातल अभी तक बहुत नीचा है। वह अभी तक पुरानी रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है। इसलिए हमारे बाह्य या आन्तरिक जगत् में बहुत विषमता पैदा हो गई है। इन विषमताओं की आंधी में हम अपनी मनुष्यता और मनुष्योचित गुणों को खो बैठे हैं।

सफल जीवन-साथी बनने के लिए हमें फिर मानवोचित गुणों का विकास करना है। हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे जीवन में भौतिक तत्त्वों की अपेक्षा आत्मिक तत्त्वों का अनुशासन अधिक है। आत्मिक गुण ही हमें जीवन में सफल बना सकते हैं। सफल जीवन ही सफल जीवन-साथी बन सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने जो विचार प्रकट किए हैं, वे पुरानी रूढ़ियों के पोषण के लिए नहीं बल्कि पाठकों को स्वतन्त्र दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा देने के लिए किए हैं। मेरी धारणा है कि आज के युग में मस्तिष्क और हृदय की स्वतन्त्रता प्राप्त किए बिना कोई भी व्यक्ति सच्चे अर्थों में जीवन-साथी नहीं बन सकता। धर्म की ज़ंजीरें या कानून की कड़ियां किन्हीं दो व्यक्तियों को एक ही रस्सी में जन्म-भर बांध ज़रूर सकती हैं, किन्तु वह बन्धन दो जीवित व्यक्तियों का आत्मिक बन्धन न होकर दो मृत देहों का बन्धन होगा। इसी तरह प्रेम का क्षणिक उन्माद भी दो शरीरों में कुछ देर के लिए वासना की चिंगारियां पैदा कर सकता है; वह भोग की आग में दोनों को जलाकर राख भी कर सकता है; लेकिन दो स्वतन्त्र, जीवित आत्माओं को जीवन-साथी बनाने में वह सफल नहीं हो सकता।

विवाह करने से ही कोई जीवन-साथी नहीं बन जाता। जो पति-पत्नी जीवन-साथी नहीं बनते, केवल अपनी सुविधा के लिए एक-दूसरे के शरीर व मन का उपयोग करते हैं; उनका घर घर नहीं, नरक बन जाता है। घर को स्वर्ग बनाना हो तो पति-पत्नी को परस्पर अनुरूपता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक में इस अनुरूपता को सम्भव बनाने के लिए मैंने कुछ व्यावहारिक निर्देश भी दिए हैं। इन निर्देशों का आधार जीवन-भर का अनुभव है। दो-चार युगल भी इन निर्देशों से अपने घर को सुखी बना सकेंगे तो मैं अपने प्रयत्न को सफल मानूंगा।

—लेखक

क्रम

साथी की आकांक्षा — पत्र | १

भार्या श्रेष्ठतमं मित्रम् ।

स्त्री पुरुष की सर्वोत्तम साथी है ।

प्रिय कमला,

कुछ दिनों से मैं अनुभव कर रहा हूं कि तुम मुझसे कुछ पूछना चाहती हो। कोई सवाल तुम्हारे होंठों तक आकर वापस चला जाता है। संकोचवश तुम चुप रह जाती हो। यह चुप्पी अच्छी नहीं। यह मौन तुम्हारे मन में एक गांठ डाल देता है। जिस रहस्य को समझने के लिए तुम सवाल करना चाहती हो, वह रहस्य राहु वनकर तुम्हारी विचार-शक्ति को ग्रस लेता है।

ऐसा निरोध मानसिक स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं होता। प्रश्न करने में तुम्हें लज्जा अनुभव होना स्वाभाविक है लेकिन तुम्हें इस झूठी लज्जा पर विजय पानी होगी। बच्चे के मन में जो शंकाएं पैदा होती हैं वे उसके होंठों पर तुरन्त आ जाती हैं। माता-पिता का सारा समय उनके समाधान में निकल जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर पाना उसका अधिकार है। इसी तरह युवावस्था की रहस्य-भरी शंकाओं का उत्तर पाना भी तुम्हारा अधिकार है। इन प्रश्नों के प्रकट करने में तुम्हें बहुत संकोच नहीं होना चाहिए।

इन प्रश्नों द्वारा तुम अपने को पहचानने का प्रयत्न करती

हो; अपने को समझने की कोशिश करती हो। तुम्हारा जीवन ऐसा मृत पाषाण नहीं है जिसके सब पार्श्व एक बार देख लेने पर व्यक्त हो जाते हैं। वह तो बहते पानी की तरह है जिसमें प्रतिक्षण नई लहरें पैदा होती हैं, जो प्रतिपल नये किनारों को छूता है और सदा नई धाराओं में बहता रहता है।

यह परिवर्तनशीलता मनुष्य को हर समय नई-नई बातें सीखने को बाध्य करती है। यह नवीनता जो उसके चारों ओर हर सुबह और हर शाम किसीन्न किसी रूप में प्रकट होती है, उसके मन में रहस्य-भरी जिज्ञासा को भर देती है। उसे जानने का उपाय यही है कि तुम अपने हितचिन्तकों से पूछो, उनके अनुभवों से लाभ उठाओ।

तुम्हारे शरीर में परिवर्तन हो रहे हैं। तुम्हें उसका ज्ञान भी नहीं होता। प्रकृति स्वयं अपना निर्माण-कार्य कर रही है। उसकी शिल्पकला का कोई अन्त नहीं है। तुम्हारा शरीर प्रकृति की प्रयोगशाला है, तुम उसमें दखल नहीं दे सकतीं। केवल उसे देख सकती हो और आश्चर्य कर सकती हो। लेकिन याद रखो, शरीर की अपेक्षा तुम्हारा मन अधिक वेग से बदल रहा है। तुम्हारे मानसिक जगत् में रोज़ परिवर्तन हो रहे हैं। तुम्हारी भावनाएं रोज़ नये रंगों में रंगी जा रही हैं। तुम्हारे मनोवेगों में रोज़ नई आंधी उठती है।

यह भी प्रकृति का आदेश है। वह बड़े रहस्य-भरे उपायों से अपना कार्य सिद्ध करती है। उसके लिए तुम्हारा शरीर एक प्रयोगशाला से अधिक नहीं। प्रकृति के आदेशों से विद्रोह नहीं हो सकता। निमित्त-मात्र बनकर तुम्हें उसके इशारों पर चलना पड़ता है। किन्तु ईश्वर ने तुम्हें बुद्धि दी है। तुम उन इशारों को

समझने की कोशिश करती हो। अपने परिवर्तित मनोभावों को पढ़ने का यत्न करती हो। यह यत्न ही तुम्हें जिज्ञासु बना रहा है। इस जिज्ञासा में ही मनुष्य की मनुष्यता निहित है। मनुष्य की यह सहज प्रेरणा ही उसे पशु-जगत् से ऊंचा उठाती है।

तुम कहो या न कहो, तुम्हारे मन में एक इच्छा बलवती हो उठी है। अब तुम अपनी नाव की पतवार अपने हाथों में लेना चाहती हो। माता-पिता के संरक्षण में ही रहते हुए चलना अब तुम्हें रुचिकर मालूम नहीं होता। तुम्हारा जीवन स्वतन्त्रता चाहता है। वह स्वतन्त्र गति और स्वतन्त्र उद्देश्य की इच्छा करने लगा है। तुम अपनी नाव माता-पिता की नाव से अलग अपनी रुचि के अनुसार किसी भी दिशा में ले जाना चाहती हो। यह इच्छा बड़ी स्वाभाविक है। इसे विद्रोह नहीं कहते। कुछ नासमझ माता-पिता सन्तान की इस स्वाभाविक इच्छा का दमन करने की कोशिश करते हैं। परिणाम यह होता है कि या तो उनकी सन्तान विद्रोह करके कुमार्ग में चल पड़ती है अथवा उनकी स्वतन्त्र कार्यशक्ति का इतना दमन हो जाता है कि उनके तन-मन में एक थका देनेवाली निश्चेष्टता भर जाती है।

विवेकशील माता-पिता सन्तान की इस स्वाधीनताप्रिय इच्छा का आदर करते हैं। उन्हें अपने अनुभव से सन्मार्ग पर जाने की प्रेरणा देते हैं। उनकी नाव के चप्पू उनके ही हाथों में देकर भी दूर से उनको जीवन की आंधियों से चेतावनी देते हुए ज्योति-स्तम्भ का कार्य करते रहते हैं। मुझे मालूम है, तुम्हारे माता-पिता बहुत समझदार हैं। उन्होंने तुम्हारे मार्ग में कभी रुकावटें नहीं डालीं। तुम्हें स्वतन्त्र रूप से अपनी नाव चलाने देने में वे सदैव तुम्हारे सहायक रहेंगे।

माता-पिता की छत्रच्छाया से कुछ दूर हटते ही तुमने यह अनुभव किया होगा कि जीवन की नाव चलाने के लिए दो हाथ ही पर्याप्त नहीं हैं। संसार के महासागर में जीवन की छोटी-सी नौका एक ही नाविक के बल पर आगे नहीं बढ़ सकती। उसे चलाने के लिए साथी की ज़रूरत है। संसार-सागर की यह यात्रा अकेले नहीं कटती। माता-पिता का साथ छूटने के बाद तुम किसी और साथी की चाह करने लगती हो। यह चाह धीरे-धीरे तुम्हारी नस-नस में भर जाती है। दिल की हर धड़कन साथी की कामना करने लगती है। यह कामना यदि कुछ देर अतृप्त रह जाए तो एक गहरी उदासी का कुहरा तुम्हारे जीवन में छा जाता है।

साथी पाने की यह चाह भी प्रकृति के रहस्य-भरे नियमों का ही एक अंग है। युवती युवक का साथ चाहती है और युवक का मन युवती के साथ की कामना करता है। यह कामना भूख लगने की इच्छा के समान ही प्राकृतिक इच्छा है। इस इच्छा की आलोचना करना प्रकृति के नियमों में छिद्रान्वेषण करना है। ऐसा दुःसाहस मैं नहीं करता। किन्तु प्रकृति की गतिविधि को न समझकर मनुष्य उसका दुष्प्रयोग कर लेते हैं। मैं उससे तुम्हें सावधान करना चाहता हूं।

उसका दुष्प्रयोग केवल प्राकृतिक प्रेरणाओं के अतिरंजन में ही नहीं होता, बल्कि उनके निरोध में भी होता है। हमें दोनों दिशाओं की अति से बचना चाहिए। मैं एक लड़की को जानता हूं जिसने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का प्रण किया था। ब्रह्मचर्य के अर्थ बहुत व्यापक हैं। मैं समझता हूं उन व्यापक अर्थों को बिना जाने उसने अपनी सदा अकेले रहने की इच्छा को ही ब्रह्मचारिणी रहने की इच्छा कहकर इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द

के प्रयोग पर मुझे आपत्ति नहीं, किन्तु उसके प्रण पर अवश्य है।

ऐसे भीषण प्रण प्रायः वही व्यक्ति करते हैं जिन्हें अपने मन में संयत जीवन बिताने का भरोसा नहीं होता। साथी पाने की इच्छा जब उन्हें बहुत परेशान करने लगती है और साधारण उपायों से उसके वेग का शमन नहीं होता तो वे ऐसे हठ-भरे प्रयोग शुरू कर देते हैं।

ऐसे प्रण प्रायः शरीर की चेष्टाओं का क्षणिक दमन ही कर पाते हैं, मन इसकी स्वीकृति नहीं देता। शरीर जब-जब इस प्रण की पूर्ति के लिए कुछ अप्राकृतिक उपायों का अवलम्बन लेता है, तब-तब मनुष्य का मन विद्रोह करने लगता है। मन और शरीर के इस संघर्ष से युवक-युवतियों को जो थकावट और शिथिलता-सी मालूम होने लग जाती है, उससे बचने का वे कोई उपाय नहीं जानते। ब्रह्मचर्य के सबसे बड़े समर्थक महात्मा गांधी-जी ने ही इसका विरोध करते हुए एक स्थान पर कहा है, "यदि इस संयम में मन और शरीर एकसाथ काम नहीं करते, तो शरीर और आत्मा बुरी तरह जर्जरित हो जाते हैं।"

इसलिए साधारण व्यक्तियों को ऐसे प्रण नहीं करने चाहिए। इस निग्रह-शक्ति का उपयोग उन्हें लोकोपयोगी कार्यों में करना चाहिए। अतिशय निग्रह में भी शक्ति का दुरुपयोग होता है। हां, जिनका मन लोकहित के कामों में पूर्णतया समर्पित हो चुका है वे ऐसा व्रत ले सकते हैं। लेकिन कौमार्य अवस्था से मैं किसी भी साधारण लड़की से यह आशा नहीं रखता कि उसका मन केवल लोकसेवा में अर्पण हो सकता है। उस अवस्था में प्रायः सभी अपनी शक्तियों और अपने आदर्शों से अपरिचित होते हैं। अतः उन्हें मध्यम मार्ग का ही आश्रय लेना चाहिए।

मध्यम मार्ग यही है कि प्रत्येक स्त्री अवस्था आने पर अपने साथी का चुनाव कर ले; एक बार चुनाव करके उस साथ को जीवन-भर निभाने का प्रण करे, उसे जीवन-साथी बना ले। इसी प्रण का नाम विवाह का प्रण है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पत्र | २

Let us love one another; for love is God and God is love—Bible.
प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है।

प्रिय कमला,

जितनी आसानी से मैं विवाहित जीवन के साथी की बात लिख गया था, उतनी आसान नहीं थी वह—यह बात मुझे तुम्हारा पत्र मिलते ही याद आ गई। उसमें भी शंकाएं हो सकती हैं। तुमने लिखा है :

" विवाह के बाद स्त्री का जीवन गृहस्थी के कामों में इतना उलझ जाता है कि उसे अपना मानसिक विकास करने का अवसर ही नहीं मिलता। उसकी आज़ादी पूरी तरह छिन जाती है।

" आप उसे कुछ भी मानें, उस वैवाहिक सुख में मेरी ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है जिसके ढिंढोरे पीटकर विवाह-वेदी पर मासूम लड़कियों की बलि दे दी जाती है और जिसका गुणगान हमारे धार्मिक लेखक, नेता और कवि किया करते हैं। वैवाहिक प्रेम की व्यर्थ आशा में मैं स्वतन्त्रता खोने को तैयार नहीं हूं। पति नामक व्यक्ति के हाथ की कठपुतली या उसके आनन्द का साधन बनकर अपनी सत्ता खोने की अपेक्षा मैं कठोर श्रम से अपने साधन आप जुटाकर स्वतन्त्र रहना अधिक पसन्द करती हूं। "

जिस आवेश में तुमने यह बात लिखी है मैं उसका कारण समझता हूं। स्वतन्त्र जीवन के विषय में जो तुम्हारे विचार हैं मैं उनका आदर करता हूं। प्रत्येक को स्वतन्त्र जीवन बिताने का पूरा अधिकार है। पति, बच्चे, माता-पिता या कोई भी इसमें बाधक नहीं होना चाहिए। यह स्वतन्त्रता ही मनुष्य की आत्मा है। जो इसकी उपेक्षा करता है वह आत्महत्या का दोषी है।

अपनी आज़ादी को बेचना अपने को बेचना है, अपने को दास बनाना है। ऐसी दासता मनुष्य की परवशता की सीमा है। प्राण देकर भी मनुष्य को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए।

लेकिन, यदि कोई अपनी इच्छा से अपनी स्वतन्त्रता, अपना सब कुछ दूसरे के हाथ दे देता है तो तुम आपत्ति नहीं कर सकतीं। स्वतन्त्रता का बहुत मूल्य है, किन्तु यदि कोई उससे भी अधिक कीमती चीज़ पाने के लिए अपनी इस अनमोल निधि को दांव पर लगा देता है तो तुम क्या कहोगी? इसे बलिदान कहोगी या समर्पण? कुछ भी कहो, मनुष्य के जीवन में इस बलिदान का बड़ा भारी महत्त्व है।

जिसका साथ पाने के लिए तुम यह बलिदान करने को विह्वल हो उठो, वही तुम्हारा सच्चा जीवन-साथी होगा। एक घड़ी आएगी जब तुम्हें अपनी स्वतन्त्रता का सबसे अच्छा उपयोग किसीके चरणों में उसका समर्पण कर देना ही प्रतीत होगा। कोई फूल जब देवता के आगे अर्पित होता है तभी उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग नहीं होता क्या? अपनी शाखा पर लगे-लगे मुरझाकर एक दिन हवा के झोंके से गिरने की अपेक्षा क्या देवार्पित होना ही पुष्प-जीवन का कृतार्थ होना नहीं है?

जिस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए तुमने अविवाहित रहने के

पक्ष में कहा है, उसका मूल्य उस मां के सामने क्या है जो अपने को मिटाकर बच्चों को बनाती है, जिसका हर सांस उनकी शुभ चिन्ताओं में लीन हो जाता है; या उस पत्नी से उसका मूल्य पूछो जो पति की प्रतीक्षा में प्रतिक्षण आंखें बिछाए बैठी रहती है, पति के पैरों की आहट सुनकर ही जो आनन्द-विभोर हो जाती है। पति-पत्नी की बात छोड़ो, मित्र के लिए मित्रों के बलिदान की कहानियां भी तुमने सुनी होंगी। बलिदान द्वारा अभिव्यक्ति पाने की यह इच्छा भी उतनी ही बलवती है जितनी स्वतन्त्रता द्वारा विकास पाने की। मनुष्य में दोनों चेतनाएं जाग्रत् रहती हैं। बलि-दान की यह भावना ही प्रेम की भावना है।

यह भावना असंयत स्वतन्त्रता की भावना से कहीं अधिक ऊंची है। स्वतन्त्रताप्रिय भावना मनुष्य के व्यक्तित्व को दृढ़ अवश्य बनाती है, किन्तु, यदि उसे संयत न रखा जाए तो वह उसे असामाजिक और एकांगी भी बना देती है। यह भावना प्रकृति के विरुद्ध है। सबसे अलग रहने की इच्छा अस्वाभाविक है। वह मनुष्य में एकाकीपन भर देती है। स्वतन्त्र रहकर वह अपने में एक ऐसा अभाव अनुभव करने लगता है, जिसका कोई उपचार ही उसे नहीं सूझता।

तुम्हें याद है, तुमने ही एक दिन कहा था, "मुझे अपने जीवन में एक अभाव-सा अनुभव होता है। ऐसा लगता है जैसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा है। जैसे जीवन की सब तारें टूटकर बिखर गई हैं। कोई भी राग स्वर में नहीं निकलता। इस अभाव की पूर्ति कैसे करूं ? जी चाहता है दुनिया-भर का ज्ञान अपने अन्दर भर लूं : मन में आता है, दिन-भर में इतना सीख जाऊं कि सब कुछ प्रामाणिक रूप से लिख सकूं। लिखने की मेरी महत्त्वाकांक्षा है।

लेकिन लिखने बैठती हूं तो भी लिखा नहीं जाता। एक विचित्र अभाव की अनुभूति मन को घेर लेती है……।"

अभाव की इस खाई को समस्त विश्व का ज्ञान-सागर भी नहीं भर सकता, किन्तु प्रेम की एक बूंद भी इसे भर सकती है। प्रेम का छोटा-सा दीपक तुम्हारे अंधेरे को उजाले में बदल सकता है। तभी तुम्हारी महत् बनने की आंकाक्षा भी पूरी होगी। साहित्य हृदय की भाषा है, मस्तिष्क की नहीं। अनुभूतियों की स्याही से साहित्य की लेखनी लिखती है। बहुत पढ़ने से लिखना नहीं आता; बहुत देखने से भी नहीं आता। बाह्य वस्तुओं के सम्पर्क में आकर हृदय में जैसी धड़कन पैदा होती है, वही लिखने में, चित्र में या संगीत में प्रकट होती है। हृदय का स्पन्दन ही कला की रचना करता है।

वह स्पन्दन प्रेम के स्पर्श से ही होता है। प्रेम ही है जो हमें विश्व के साथ जोड़ता है। यह भी स्वाभाविक प्रेरणा है। हमारी अतिशय स्वार्थ-साधना की प्रवृत्तियां इस स्वाभाविक संयोग में बाधाएं डालती हैं। बेरोक आज़ादी की इच्छा और महत्त्वाकांक्षाएं हमें अपने ही दायरे में कैद कर देती हैं। हमारे स्वार्थ आत्मा को अपनी कड़ियों में कस लेते हैं। हमारी आंखें अपने विकृत रूप को ही देखने लगती हैं। हमारी चेष्टाएं केवल स्वाभिमुखी हो जाती हैं, जीवन में अकेलापन व विषमता आ जाती है।

इसका एक ही उपाय है। आज से तुम अपने बारे में कम सोचो और अपने सभी निकट के लोगों से खुलकर मिलो। हरेक से उसके विषय में प्रश्न पूछो; उनके सुख-दुःख की बात सुनो; उनकी कठिनाइयों को पहचानो; उनमें पूरी दिलचस्पी लो। बहुत जल्दी तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि प्रत्येक व्यक्ति कौतुक का

भंडार होता है। हरेक के पास दिलचस्प बातों का खज़ाना हो गया है, उस खज़ाने को खोलने की एक ही चाबी है—वह है प्रेम-पूर्ण शब्द या प्रेमपूर्ण व्यवहार।

मत सोचो कि ऐसा करने से तुम अपनी 'आज़ादी' को किसी तरह खो दोगी या अपना सम्मान उनकी दृष्टि में कम कर लोगी। ठीक इसके विपरीत होगा। लोगों की दृष्टि में तुम्हारे प्रति प्रेम और प्रशंसा के भाव जागेंगे। तुम्हारा एकाकीपन और तुम्हें सदा बेचैन रखनेवाला आत्मचिन्तन कम हो जाएगा। तुम्हें यथार्थ मानसिक स्वतन्त्रता का अनुभव होगा।

स्मरण रखो, तुम स्वतन्त्रता को अपने मन की चहारदीवारी में कैद रखने से ही उसकी रक्षा नहीं कर सकतीं। यथार्थ स्वतंत्रता वही है जो प्रेम में पूर्ण समर्पण के बाद भी बनी रहती है। वह ऐसा काफूर नहीं है जो दूसरों के स्पर्श से विलुप्त हो जाए।

स्वतन्त्रता तो मन की स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्र मन के किए हुए बलिदान के बाद भी मन स्वतन्त्र रहता है। हां, बंधे दिल से जो बलिदान दिया जाए वह तुम्हारी स्वतन्त्रता का शत्रु है; उससे बचो। प्रेम और स्वतन्त्रता का स्वाभाविक वैर नहीं है। दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं। वह प्रेम प्रेम नहीं जो दूसरे की स्वतन्त्रता का अपहरण करता है। प्रेम तो दो स्वतन्त्र हृदयों के स्वेच्छा-मिलन से ही होता है। बेबस होकर किसीके कदमों में गिरना गुलामी है, प्रेम नहीं। प्रेम गिरना नहीं, उठना सिखाता है; बंधना नहीं, आज़ाद होना सिखाता है।

दो पक्षी साथ-साथ प्रेम की डोर में बंधे आकाश में उड़ते हैं। प्रेम उनके पंख नहीं काटता, केवल साथ-साथ उड़ने की प्रेरणा देता है। कभी सोचा है तुमने कि इतने बड़े आकाश में

दोनों पक्षी साथ-साथ किसलिए उड़ते हैं ? केवल इसलिए कि आकाश का भारी सूनापन उनके पंखों को भारी न कर दे और वे थककर गिर न जाएं। एक-दूसरे की ओर देखते हुए वे इतने सुनसान आकाश की दूरी को तय कर जाते हैं।

मनुष्य की जीवन-यात्रा भी अकेले नहीं कटती। उसे भी किसीका सहारा चाहिए। पुरुष को प्रेमार्त स्त्री और स्त्री को प्रेमार्त पुरुष के सहारे से बड़ा सहारा और कोई नहीं हो सकता।

मैं तुमसे एक बात पूछता हूं। जिस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए तुम विवाह-सम्बन्ध में बंधना नहीं चाहतीं, उस स्वतन्त्रता की रक्षा अन्य किस प्रकार करोगी ? पूर्ण स्वतन्त्रता कहां है ? अपने को धोखा मत दो। क्या तुम आज पूरी तरह स्वतन्त्र हो ? अपने मन को टटोलो। क्या वह अपनी इच्छाओं का दास नहीं है ? अपनी प्रवृत्तियों से कौन स्वतन्त्र हो सकता है ! भूख से, प्यास से, आत्माभिव्यक्ति की कामना से और प्रेम की पुकार से कौन स्वतन्त्र रहकर जी सकता है !

मनुष्य अपूर्ण है, अपनी प्रवृत्तियों की तृप्ति चाहता है ; उसके लिए प्रयत्न करता है; यही तो मनुष्य-जीवन है। इस तलाश में, अतृप्ति में और अनवरत प्रयत्न में ही मनुष्य का जीवन व्यतीत होता है। विवेक द्वारा इस प्रयत्न को सार्थक और सुविधा-पूर्ण बनाना ही मनुष्य के अधीन है। पूर्णता न तो मनुष्य का आदर्श है और न संभव है।

तुम्हारा शुभचिन्तक
....

सुख की खोज

पत्र | ३

जीवन का लक्ष्य निर्माण है—इसीलिए गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का आधार है।

प्रिय कमला,

विवाह के उपरान्त जिस स्वतन्त्रता के अपहरण का तुम्हें भय है उसके दो रूप हैं: भावनात्मक और आर्थिक। भावनात्मक स्वतन्त्रता पर विवाह में बन्धन लग जाएगा। अपनी सम्पूर्ण भावनाएं तुम्हें अपने पति में केन्द्रित करनी होंगी। इस केन्द्रीकरण में शांति है या भावनाओं को इधर-उधर बिखेरने में—इसका उत्तर अपने ही दिल से पूछो।

मनुष्य स्वभाव से भावुक होता है। प्रेम सबसे महत्त्व की भावना है। भावनाओं की प्रेरणा-शक्ति ही मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करती है। बहते हुए पानी के प्रवाह या विद्युत् की तरंगों में जो शक्ति होती है वही भावनाओं में भी होती है। इस शक्ति का उपयोग इसे केन्द्रित करके निर्माण-कार्य में परिणत करने से ही होता है। इसका केन्द्रीकरण इसे उपयोगी बनाने में आवश्यक शर्त है। मनुष्य की भावनाएं भी किसी निर्माण-कार्य में युक्त होकर ही उपयोगी होती हैं। अन्यथा, इस शक्ति का अपव्यय होता है। अपव्यय से वह बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है। स्थान-अस्थान का विचार किए बिना प्रेम का आदान-प्रदान करना प्रेम का अपव्यय करना है। इस अपव्यय में युवकहृदय को क्षणिक आनन्द

भी मिल सकता है। लेकिन, ऐसे आनन्द का अन्त गहरी थकान और भग्नहृदयों के श्मशान में ही होता है। ऐसे प्रेम की लौ क्षण-भर जलकर बुझ जाती है और बुझते हुए दीपक का धुआं मनुष्य के अंतर में इतना घना भर जाता है कि वह उसकी जीवन-शक्ति को मृतप्राय कर जाता है।

किशोरावस्था की भावनाएं कच्ची होती हैं। उनमें परिपक्वता या विवेक की जागृति भी अवस्था के साथ आती है। तरुणावस्था की भावनाओं का रूप किशोरावस्था की भावनाओं से भिन्न होता है। युवावस्था या प्रौढ़ावस्था में उनका रूप और भी बदल जाता है। आयु की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के मन में भावनात्मक स्वतन्त्रता के स्थान पर भावनात्मक सुरक्षा की चाह बढ़ती जाती है। स्वतन्त्रता का नाश किए बिना, सुरक्षा देने के लिए विवाह से अधिक सुन्दर और उपयोगी संस्था का आविष्कार नहीं हो सकता था। पुरुष और स्त्री की भावनाएं इस विवाह-सरोवर में आकर मिल सकती हैं। दो झरने अलग-अलग यहां आकर गिरि-शिखरों से चलकर एक ही झील में आ मिलते हैं और यहां आकर प्रशान्त सरोवर में बदल जाते हैं—प्रवाहों की अनवरत गति और संघर्ष की अशांति का इस सरोवर में अन्त हो जाता है। जीवन में स्वतन्त्रता से अधिक सुरक्षा का मूल्य है, क्योंकि सुरक्षा के वातावरण में ही निर्माण का कार्य हो सकता है। जीवन का लक्ष्य मानव-निर्माण है। इसलिए झरने के प्रवाह से सरोवर का मूल्य ज़्यादा है।

विवाह भी ऐसा ही सरोवर है। मैं इसे प्रधानतया युवक-भावनाओं की सुरक्षा का एक सुन्दर साधन मानता हूं। इस आधुनिक अर्थयुग में कुछ लोग इसे स्त्री की आर्थिक सुरक्षा का भी

साधन मानते हैं। उनका विचार है कि लड़की की आर्थिक कठिनाइयों का हल करने के लिए और पुरुष की भोगेच्छा-सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए ही विवाह की स्थापना हुई है।

मैं जानता हूं कि तुम आर्थिक स्वतन्त्रता की रक्षा किसलिए चाहती हो। इस अर्थयुग में मनुष्य के जीवन का मूल्य आर्थिक तुला पर ही तोला जा रहा है। इसकी व्यक्तिगत या सामूहिक चेष्टाओं का मूल अर्थ-सम्बन्धी समस्याओं के हल में ही खोजा जाने लगा है। इस आर्थिक प्रधानता के युग में धन-दौलत को ही मनुष्य की प्रेरणाओं का मूल स्रोत माना जाने लगा है।

यह माना जाता है कि लड़की के वयस्क होते ही बाप को लड़की के लिए उम्र-भर रोटी-कपड़े का आसरा ढूंढ़ने की चिन्ता घेर लेती है। लड़के के बाप को यह चिन्ता नहीं होती। उसके लिए तो स्वतन्त्र आजीविका के सब रास्ते खुले ही हैं। लड़कियों के लिए ये रास्ते बन्द हैं। इसलिए उसे किसी लड़के के सहारे ही जीना होगा, रोटी-कपड़े का साधन जुटाना होगा। वह सहारा तभी मिलता है जब वह अपने को लड़के के अर्पण कर देती है। अर्पण की इस सामाजिक विधि का नाम ही विवाह रखा गया है—यह मान्यता केवल कुछ विकृत मस्तिष्क के लोगों की है। सभी मनुष्य इसे स्वीकार नहीं करते।

इस सम्बन्ध में मुझे तुम्हारे ये शब्द याद आ रहे हैं, "सच तो यह है कि लड़की खुद को बेचकर जीने का सहारा पाती है। मामूली बेच-खरीद में और विवाह के नाम पर हुए इस सौदे में अन्तर इतना ही है कि यह सौदा जीवन-भर के लिए होता है। लड़की को जीवन-भर गुलामी की ज़ंजीरें पहननी पड़ती हैं। जब तक पुरुष की कृपा बनी रहे वह उसे 'घर की रानी' कहता है, लेकिन समय

के बदलते ही वह 'घर की लौंडी' बन जाती है।"

मैं जानता हूं कि विवाह के नाम पर यह बेच-खरीद आज हमारे समाज में बेरोक चल रही है। खुलेआम लड़कियों के बदले रुपया वसूल किया जा रहा है या लड़की देते समय रुपयों की थैलियां भेंट की जाती हैं। विवाह आर्थिक व्यवस्था का ही रूप रह गया है। विवाह ही क्या समाज की प्रत्येक संस्था का आधार ही आर्थिक बन गया है। आर्थिक सुविधा ही इसके मूल में रह गई है। किन्तु मैं पूछता हूं कि इसमें क्या लड़कियों का भी दोष नहीं है। क्या वे स्वयं इसकी ज़िम्मेदारी से सर्वथा मुक्त हैं ?

मैं उन अनपढ़ लड़कियों की बात नहीं कहता जो गठरी में लपेटकर किसी भी पुरुष की पीठ पर लाद दी जाती हैं। मैं उनकी बात कहता हूं जो पढ़ी-लिखी हैं, जो न केवल इस सौदे को चुपचाप देखती हैं बल्कि इसमें सक्रिय भाग लेती हैं। साथी का चुनाव करते हुए वे स्वयं किसी गरीब के घर की रानी बनने के स्थान पर अमीर घर की लौंडी बनना कबूल करती हैं। उनकी दृष्टि में रुपये का मूल्य प्रेम से अधिक होता है।

पढ़-लिखकर ऐसी लड़कियां बहुत व्यावहारिक बन जाती हैं। कोमल भावनाओं को और आदर्शप्रियता को ये लड़कियां मूर्खता समझने लगती हैं, प्रेम को निरा लड़कपन। वे पुरुष की भोग-सम्बन्धी कमज़ोरियों को खूब जानती हैं, इसलिए उनका पूरा लाभ उठाती हैं। यह ठीक है कि कामान्ध पुरुष उनके यौवन का भोग करना चाहता है, किन्तु क्या यह सच नहीं कि अर्थान्ध लड़कियां भी पुरुष के धन का भोग करना चाहती हैं ?

दोष हमारी शिक्षा का और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का है। आधुनिक शिक्षा हमारे मन में धन की अमिट लालसा को

जगा देती है। यह लालसा पुरुष में भी जागती है और स्त्री में भी। दोनों ही इसके शिकार होते हैं। सारा मनुष्य-समाज इसका शिकार बना हुआ है। परिणाम यह होता है कि भूखे भेड़ियों की तरह हम लोग रुपये की तलाश में दिन-रात घूमते हैं। कठिनाई यह है कि दुनिया में धन की राशि परिमित है। सबको उस खाते में से ही अपना भाग लेना है। इसलिए जब एक के पास अधिक धन आता है तो वह दूसरे के भाग का होता है। एक की अमीरी दूसरे की गरीबी पर ही पनप सकती है। संघर्ष शुरू हो जाता है। हम एक-दूसरे का गला काटने लगते हैं।

पुरुष इस संग्राम में स्त्रियों की अपेक्षा आगे बढ़ जाते हैं। प्रकृति ने पुरुष के शरीर को अधिक कठोर बनाया है। स्त्रियों के शरीर में कोमलता का अंश अधिक है। वे पीछे रह जाती हैं। इसका प्रतिकार वे अपनी कोमलता के बल पर धन कमाने के उपाय करके करती रहती हैं। पतित पुरुष अपने पुरुषार्थ से जो पाप करता है, पतिता स्त्रियां वही अपने सौंदर्य से करना चाहती हैं—दोष दोनों का है; पाप के मार्ग दोनों के हैं।

किसी एक को हम क्या रोकें, सारा ज़माना ही इस लूट-खसोट में भाग ले रहा है। जिसके पास जो हथियार है उसका वह उपयोग कर रहा है।

यह सच है कि पहल पुरुष ही करता है। पहले वह विलासी बनता है, लेकिन धनलोलुप स्त्रियां उस विलासिता की आग को शान्त करने के स्थान पर उसमें घी की आहुति डालती हैं। पुरुष समझता है, मैं स्त्री का भोग कर रहा हूं। स्त्री समझती है, मैं पुरुष के धन का भोग कर रही हूं। बहुत जल्दी भोग की लपटें दोनों की आत्मा को राख कर देती हैं।

जो विवाह इस क्रय-विक्रय के आधार पर खड़े होते हैं उनमें विष ही विष भरा होता है। वे कभी सुख का कारण नहीं बन सकते। आर्थिक परवशता की नींव पर खड़ी हुई विवाह की इमारत बहुत जल्दी खण्डरात में बदल जाती है। वहां कभी प्रेम की रोशनी नहीं जलती। उसका अंधकार कभी दूर नहीं होता। उसके आंगन में कभी फूल नहीं खिलते, कांटों के झाड़ ही उगते हैं जो पति-पत्नी दोनों को लहूलुहान कर देते हैं।

स्त्री को आर्थिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए क्या करना चाहिए, इस प्रश्न पर मैं आगे लिखूंगा। यहां इतना कहना ही पर्याप्त है कि स्वतन्त्रता के अपहरण के भय से विवाह न करने की दलील सच्ची नहीं है। तुममें आत्मबल होगा, धन की लालसा ने तुम्हारे मन को बीमार नहीं किया होगा, तो कोई पुरुष तुमसे तुम्हारी आज़ादी को नहीं छीन सकता।

अमीर घरानों की बात छोड़ दो; गरीबों के घर में क्या विवाहिता स्त्रियां पुरुष के साथ-साथ काम नहीं करतीं? जो स्त्री मेहनत करके घर के खर्चों में पुरुष का हाथ बंटाती है, वह पुरुष की दृष्टि में अपना आदर और भी अधिक बढ़ा लेती है। उसे ऐसा करने से कोई नहीं रोकता। मध्यम वर्ग के घरों में भी पढ़ी-लिखी स्त्रियां धनोपार्जन में पुरुष की सहायक बनती जा रही हैं। जिन घरों में घर का सारा काम पत्नी को ही करना पड़ता है, सास व ननदों का सहारा नहीं है, वहां पत्नी को इतना समय ही नहीं मिलता। इसलिए आर्थिक परवशता की समस्या केवल अमीर घरानों की समस्या है। वहां पुरुष भी विलासी हैं और स्त्रियां भी। परन्तु वहां भी स्त्री चाहे तो विलासिता छोड़कर कोई भी काम कर सकती है।

मेरी धारणा तो यह है कि आर्थिक प्रश्न को साथी के चुनाव से दूर ही रखना चाहिए। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनपर अधिक ध्यान देना चाहिए।

विवाह की 'जंजीरों' से बचने के पक्ष में तुमने एक बात और कही थी। वह यह कि "जिधर सुनो, विवाहित व्यक्तियों के रोने-कराहने की आवाज़ आ रही है। आज तक एक भी जोड़ा पूर्ण रूप से सुखी नहीं देखा। जिसे देखा, उसे इस आग की लपटों में झुलसते ही देखा। आंखों से देखकर तो भट्ठी में नहीं कूदा जाता। जब आंखें बन्द थीं, मां-बाप उसमें अपने हाथों धकेल देते तो बात और थी। अब, स्वयं उस आग में कूदने का साहस नहीं होता।

कुछ अंशों में तुम्हारी बात सच है। विवाहित जीवन फूलों की सेज नहीं, कांटों का मार्ग है। लेकिन यह बात तो जीवन की सम्पूर्ण यात्रा पर ही लागू होती है। जीवन का मार्ग बड़ा कठिन मार्ग है। इसमें आनन्द-भोग कम और कर्तव्य-कार्य ही अधिक हैं। उन कर्तव्यों को हंसते-हंसते निभानेवाला ही सुखी कहलाता है।

वयस्क व्यक्तियों की दुनिया में विवाहितों की संख्या अधिक है। इसलिए रोनेवालों में भी उनकी संख्या अधिक ही रहेगी। अविवाहित कम हैं, लेकिन वे भी रोते ही देखे गए हैं। गणना की जाए तो शायद रोनेवाले अविवाहितों की आनुपातिक संख्या ही अधिक होगी। पूर्ण सुखी यहां कौन है ? सुख को आदर्श मानकर ही जीवन की यात्रा पूरी नहीं हो सकती। सुख को लक्ष्य मानकर चलें तो जीवन में दो कदम चलना कठिन हो जाए। जीवन का दूसरा नाम कर्तव्य-पालन है। विवाह का आदर्श भी सुख के अधीन

कर्तव्य-पालन है। कर्तव्य-पालन के मार्ग में जो सुख मिल जाए उसीसे हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। वह सुख तलाश करने से नहीं मिलता, स्वयं ही हवा के झोंके की तरह वह आता है और चला जाता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

साथी का चुनाव

पत्र | ४

If thou wouldst marry wisely marry thy equal.
समान स्थिति के पति-पत्नी का विवाह ही आदर्श चुनाव है।

प्रिय कमला,

हां,—जीवन की इस कठिन यात्रा को हम अपना अनुकूल साथी पाकर ही आसान बना सकते हैं। साथी तो संसार में बहुत मिलते हैं। लेकिन वे प्रायः अपने स्वार्थों के साथी होते हैं। वे किसी विशेष अभिप्राय से ही हमारे साथ कुछ देर चलते हैं। अभिप्राय पूरा होने के बाद वे अपने मार्ग पर चले जाते हैं। ऐसे क्षणिक साथियों से हम एकाकी चलना अधिक पसन्द करने लगते हैं, क्योंकि वे साथी कुछ लेने के अभिप्राय से आते हैं। उनका साथ केवल कुछ देर की शारीरिक निकटता होती है। हमारी आत्मा उनके संपर्क में नहीं आती। उसके द्वार बन्द ही रहते हैं।

सच्चा साथी वह है जिसके लिए हमारी आत्मा के द्वार खुल जाएं; जो कुछ लेने के लिए हमारे साथ न चले बल्कि केवल साथ चलने के लिए ही चले; जिसके साथ चलने का मूल्य न चुकाना पड़े; जिसके साथ हमारे कदम खुद ही मिल जाएं, मिलाने की कोशिश न करनी पड़े।

ऐसा साथी ही सच्चा साथी होगा। उसीसे तुम्हारा प्रेम होगा। विवाह का आधार प्रेम ही होना चाहिए। प्रेम-विवाह ही आदर्श विवाह है।

यहां प्रेम से मेरा अभिप्राय प्रथम-दृष्टि के प्रेम से नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम के विकास में प्रथम दृष्टि का महत्त्व भी बड़ा है किन्तु प्रथम दृष्टि के प्रेम में प्रायः वासना का अंश अधिक रहता है। यह सच है कि प्रेम का बीज-वपन प्रथम दर्शन में हो जाता है। मनुष्य का मन नेत्रों में रहता है। किसीके दिल को हम उसकी आंखों में पढ़ सकते हैं। आंखों का काम बाहर की वस्तु को देखना ही नहीं, अन्तर् के जगत् को दिखाना भी है। वे दिल के दर्पण का काम करती हैं। चार आंखें होने पर दो प्रेमियों को उतना ही रोमांच होता है जितना एक-दूसरे के स्पर्श में।

किन्तु प्रथम दृष्टि के आकर्षण को ही विवाह का आधार नहीं बनाना चाहिए। इस आकर्षण में धोखा हो सकता है। संभव है वह केवल दो वासना-भरे दिलों का आकर्षण हो। प्रेम इस आकर्षण से बहुत ऊंची चीज़ है। इन दो अक्षरों का रहस्य समझना कठिन काम है। इस शब्द की उचित व्याख्या करना मेरी शक्ति से बाहर है; किन्तु अगले कुछ पृष्ठों में मैं जो कुछ लिखूंगा शायद उससे तुम्हें प्रेम को समझने में कुछ सहायता मिले।

प्रेम की गणना साधारणतया मनुष्य की अन्य सहज भावनाओं में की जाती है। किन्तु मुझे इसमें सन्देह है। प्रायः अन्य सभी भावनाओं की अनुभूति दुःखपूर्ण या उद्दीपक होती है। वे मन को सन्तुष्टि और शांति नहीं दे पातीं। केवल एक स्फूर्ति-सी जगा देना उनका काम होता है। उन्हें हम मन के आवेग कह सकते हैं। प्रेम मन को शांति और तुष्टि देता है। उसमें आवेग के साथ तृप्ति भी होती है।

वह प्रेम मन, शरीर और बुद्धि तीनों से किया जाता है। केवल एक के माध्यम से यह काम नहीं होता। हां, उसकी प्रथम

अभिव्यक्ति पहले शरीर द्वारा ही होती है—आंखें देखती हैं। कान जो सुनते हैं संगीत बन जाता है, फूल की सी सुवास देह के रोम-रोम में भर जाती है, स्पर्श भी अपनी अव्यक्त भाषा में प्रेम का सन्देश लाता है—इसी प्रकार प्रेम का जन्म होता है। प्रेम का प्रथम सन्देशधर शरीर ही होता है।

इससे यह न समझना कि चमकते चेहरे ही देखने वाले को मुग्ध करते हैं; अथवा स्वस्थ या सुडौल शरीर में ही सम्मोहन-शक्ति होती है। सुन्दरता का माप प्रायः वस्तु में नहीं, देखने वाले की नज़र से होता है। सौंदर्य की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जिन आंखों को जैसा रूप पसन्द आता है उनके लिए वही सुन्दर हो जाता है। पसन्द की कसौटियां भी बदलती रहती हैं; और समय के साथ पसन्द भी बदलती रहती है। इस प्रथम दर्शन की पसन्द को ही हम प्रेम का आधार नहीं मान सकते। यहां कह सकते हैं कि यह आकर्षण प्रेम की पहली सीढ़ी है।

इस प्रथम प्रेम को यदि बुद्धि की स्वीकृति मिल जाती है तो वह अधिक गहरा हो जाता है। शारीरिक आकर्षण की डोर बहुत जल्दी टूट जाती है, यदि हमारा मन भी उस डोरी में न बंध जाए और हमारा मस्तिष्क भी उस प्रेम की गवाही न दे। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि प्रेम जैसी भावनाप्रधान चीज़ में तर्क का कोई दखल नहीं है। मैं यह नहीं मानता। प्रेम में भी तर्क का बड़ा प्रभाव है। हृदय की गहराई तक पहुंचने के लिए प्रेम को तर्क के बन्द दरवाज़ों को खोलने की प्रेरणा करनी पड़ती है। बुद्धि के द्वार बन्द रहेंगे तो प्रेम पहली सीढ़ी से ही वापस लौट जाएगा।

सौभाग्य से यदि बुद्धि द्वारा स्वीकृति पाकर मन के द्वार खुल गए तो प्रेम का विकास शुरू हो जाता है। मन की चाहना शरीर

की चाहना से अधिक उत्कट और स्थायी होती है। मन का मिलन होने के बाद शारीरिक निकटता की अपेक्षा ही नहीं रहती। वह व्यक्ति जिससे प्रेम है, आंखों के सामने हो या न हो, मन में उसके लिए प्रेम की भावना कम नहीं होती। किसीकी याद ही जब मन को सुखी करने लगे तो समझना चाहिए कि मन भी उससे प्रेम करने लगा है। मन का मिलन वियोग नहीं जानता। उस समय शारीरिक वियोग भी प्रेम की मात्रा को कम नहीं करता। शारीरिक संयोग का महत्त्व बहुत कम हो जाता है।

यदि ऐसा न हो सके, कोई आकर्षण प्रेम का रूप न पकड़ सके, तो समझना चाहिए कि वह केवल मित्रता या स्नेह तक ही सीमित है। उसे प्रेम कहना भूल होगी।

साधारणतया लोग प्रेम की इस पूर्णता को नहीं जानते, इसीलिए अपने अधूरे प्रेम के सम्बन्ध में असफल होकर प्रेम को कोसते हैं। लेकिन वास्तव में उन्हें इस असफलता के लिए अपने अधूरे तथा कथित प्रेम को और अपने को ही दोषी मानना चाहिए।

प्रेम की इस परिभाषा को अच्छी तरह समझ लेने के बाद हर व्यक्ति अपने प्रेम सम्बन्धों को ठीक दृष्टिकोण से देख सकता है। एक व्यक्ति उन या कुछ इने-गिने व्यक्तियों से ही प्रेम कर सकता है जो उसके शरीर और आत्मा में समा जाए। शेष व्यक्तियों से वह केवल मित्रता का सम्बन्ध रख सकता है। उसे जान-पहचान भी कह सकते हैं। यह कहकर वह उन्हें धोखा नहीं दे सकता कि वह उनसे प्रेम करता है।

हर युवक और युवती अपनी तरुणावस्था में प्रेम-सम्बन्धी मामलों में अपने को धोखा देते हैं। वे प्रथम दर्शन के आकर्षण को या दो-चार मीठी बातों के विनिमय को प्रेम का रूप देकर अपने

दिल में एक विलक्षण-सी पीड़ा लिए फिरते हैं। वे अपने मन की ही कामनाओं को नया-नया रंग देकर ऐसे अनोखे स्वप्न लिया करते हैं जिनका कोई आधार ही नहीं होता और दूसरे से ऐसी आशाएं रखना शुरू कर देते हैं जिनकी दूसरे को स्वप्न में भी कल्पना नहीं होती।

उदाहरण के लिए तुम्हें एक लड़की की बात बताता हूं। उसने अपनी एक समस्या मेरे सामने रखते हुए कहा :

"एक व्यक्ति मेरे पिताजी के आफिस में काम करता है। वह उम्र में मुझसे बहुत बड़ा है। मुझे पूरा विश्वास है कि वह मुझे चाहता है, मुझसे प्रेम करता है। लेकिन किसी कारण से अपना प्रेम प्रकट नहीं करता। मैं भी उसे चाहती हूं, किन्तु मैं भी लज्जा से या इस डर से भी कि कहीं उसके मन में मेरा आदर कम न हो जाए, अपने दिल की बात ज़ाहिर नहीं करती। मैं चाहती हूं कि इस मामले में पहला कदम वही उठाए। क्या आप बता सकते हैं कि यह किस तरह संभव हो सकता है? मेहरबानी करके मुझे यह सलाह न दीजिएगा कि मैं उसे भूल जाऊं, क्योंकि यह मेरे लिए कभी संभव नहीं होगा।"

मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह यह था, "ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे प्रेम में प्रेम कम और कामना अधिक है। तुम्हारा प्रेम कामनामय प्रेम है। जब कोई किसीको अपने पूरे मन और मस्तिष्क से प्रेम करता है तो उस प्रेम में कामना शेष नहीं रहती। वह प्रेम दूसरे को अपना बनाने की इच्छा नहीं रखता, क्योंकि वह स्वयं दूसरे का बनकर रह जाता है। तुमसे अधिक वह व्यक्ति समझदार दिखाई देता है। वह तुम्हें प्रेम करता है; मगर वह उसे व्यक्त नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि यह व्यर्थ और अनावश्यक

है। उसका ऐसा प्रेम है जो सदा स्थिर रहेगा। तुम्हें उसपर विश्वास करना चाहिए। जो प्रेम बहुत शीघ्र प्रदर्शन की कामना करने लगता है वह प्रायः अस्थिर होता है। प्रदर्शन की कामना तुम्हारी ओर से है। इससे ज़ाहिर होता है कि तुमने उसके मेलजोल को अतिरंजित रूप दे दिया है। तुम ऐसी कल्पनाएं करने लगी हो जिनका उसे ध्यान भी नहीं है। कामनापूर्ण प्रेम को मन में स्थान देकर तुम व्यर्थ ही अपना सुख नष्ट कर रही हो। प्रकृति का नियम है कि हम उतना ही प्रेम किसीको दे सकते हैं जितना हमें उसके बदले में दूसरी ओर से मिलता है। इससे अधिक चाहने की कामना रखना व्यर्थ है।

"मेरी सलाह है कि जिस प्रकार तुम्हारा मित्र तुमसे एकांत-प्रेम करता है, उसी प्रकार तुम भी एकान्त-प्रेम करती रहो। वह इस बात को अच्छी तरह जानता होगा कि वह इससे आगे नहीं बढ़ सकता, इसलिए वह आगे नहीं बढ़ता। जब तुम्हारे प्रेम का दृष्टिकोण बदल जाएगा तब तुम अपने को स्वतन्त्र और सुखी अनुभव करोगी। तुम्हारा प्रेम गहरा और स्थायी हो जाएगा।"

यह सब मैंने तुम्हें इसलिए कहा कि मेरा दृढ़ मत है कि विवाह का आधार प्रेम ही होना चाहिए। जीवन-साथी वही बनता है जहां प्रेम हो। किन्तु यहां मैं तुम्हें एक बहुत ही क्रियात्मक निर्देश देना चाहता हूं। अरब में एक उक्ति है : 'It is better for a woman to marry a man who loves her than a man she loves.'—अच्छा यह है कि तुम उस पुरुष से विवाह करो जो तुमसे प्रेम करता है न कि उससे जिसे तुम चाहती हो।

यह आवश्यक नहीं कि विवाह से पूर्व का प्रेम ही वैवाहिक

प्रेम का आधार बन सकता है। यह भी अनिवार्य नहीं कि चोरी-चोरी आंखों का चार होना ही दो दिलों में प्रेम का बीज बोता है और जब तक आंखें चार न हों, तब तक विवाह नहीं करना चाहिए।

मुझे ऐसे बहुत-से युवक मिले हैं जो यह कहते हैं कि जब तक किसी लड़की से प्रेम नहीं हो जाएगा, वे विवाह नहीं करेंगे। दूसरों की बात छोड़ो, तुमने ही एक दिन मुझसे कहा था कि अब तो तभी विवाह करूंगी जब किसीसे दिल मिल जाएगा।

मैंने पूछा था कि समझ लो, संयोगवश तुम्हारा दिल किसीसे मिला ही नहीं, या मिलकर अलग हो गया, तब ?

तुमने कहा था, "तब विवाह ही नहीं करूंगी !"

दिल मिलने के बाद ही विवाह करने की शपथ से आजकल की लड़कियों का एक बहुत बड़ा भाग दुखी जीवन बिता रहा है। यह अवस्था ऐसी होती है कि दिल चुटकियों में मिलते और उससे भी जल्दी जुदा होते हैं। कभी झुकी हुई पलकों में दिल झूल जाता, कभी हवा में उड़ते आंचल के छोर पर लटक जाता है। दो मीठी बातें हुईं, हंसने-हंसाने का खेल हुआ या चलते-फिरते दो कदम साथ चल लिए कि दिलों का सौदा हो गया। जीवन-भर साथ रहने के सपने शुरू हो गए। दो दिन बाद पट-परिवर्तन हुआ। आंखों का काजल धुल गया। बड़ी-बड़ी आंखों में सूखापन दिखाई देने लगा। आंचल की सलवटें उतर गईं। रंग फीका पड़ गया। बातों में वह चुलबुलापन नहीं रहा। अदाओं में गुदगुदी नहीं रही। बस, इतने में ही सब सपने टूट गए। सितार की तारें बेसुरा राग अलापने लगीं। तारों में विरह के शोले नज़र आने लगे। जिससे प्रेम किया था उससे घृणा करने लगे। जीवन में

विष ही विष भर गया। जवानी के सुनहरे दिनों पर निराशा के घने काले बादलों को छाया पड़ गई।

इस तरह भग्नहृदय होकर हज़ारों पढ़े-लिखे जवान लड़के और डिग्रीप्राप्त लड़कियां अपनी जवानी को खाक में मिला रही हैं और प्रण किए बैठी हैं कि जहां प्रेम होगा, वहीं विवाह करेंगी।

तुम्हें और उन सबको मेरी यही सलाह है कि वे आज से अपने पर भरोसा करना छोड़ दें। तुम्हें अभी प्रेम का अर्थ ही नहीं आता। अभी तुम्हारी भावनाएं परिपक्व नहीं हुई हैं। उनमें निरा कच्चा-पन है। ऐसी कच्ची भावनाओं पर भरोसा न करके अपने माता-पिता पर भरोसा करो। तुम्हारी चिन्ता उनकी चिन्ता का विषय है। तुम्हें प्रेम करना नहीं आता। तुममें लड़कपन बहुत है। विवाह के बाद तुम्हें प्रेम करना आ जाएगा। प्रेम कोई बिजली नहीं है जो एक बार चमककर बादलों में ओझल हो जाए। यह तो वह दीपक है जिसे बड़ी लगन से जलाया जाता है, हृदय के स्नेह से भरा जाता है और आत्मा के प्रकाश से उसकी लौ को प्रदीप्त किया जाता है। संसार के झोंके उसे बुझाने को आते हैं तो बड़ी साधनाओं से उसकी रक्षा की जाती है।

इतने बलिदानों से ही प्रेम की भावना दृढ़ होती है। बलिदान ही प्रेम का पोषण करते हैं। जीवन-स्थायी प्रेम जीवन-भर का बलिदान चाहता है। यह वह बेल नहीं है जिसे एक बार बोकर जन्म-भर फल-फूल लेते रहो। इसे तो प्रतिक्षण अपने रक्त से सींचना होगा और बड़े कष्टों से उसकी रक्षा करनी होगी।

मेरा तो विश्वास है कि विवाह के बाद का रोमांस, प्रेम-परिचय, विवाह के पूर्व परिचय से भी अधिक रंगीन होता है,

रोमांचकारी होता है। विवाह से पूर्व का मिलन धीरे-धीरे प्रेम का रंग पकड़ता है। विवाह के बाद का मिलन पहले ही पूरे रंग में पूरी चमक-दमक से सामने आता है। ठीक वैसे ही, जैसे नाटक के रंगमंच पर कोई सुन्दर दृश्य परदे के खुलने के साथ ही प्रकट हो जाता हो। वैवाहिक मिलन की यह आकस्मिक झलक उस झलक से कहीं अधिक रोमांचजनक है जो एक धुंधले कुहरे के पीछे से धीरे-धीरे प्रकाश में आती हुई मूर्तियों के साक्षात् प्रकट होने में होता है।

जो उत्कण्ठा एक अजनबी से मिलने में होती है वह जानी-पहचानी सूरतों के सामने आने में नहीं होती। विवाह की पहली सुहागरात की भेंट अविवाहितों के प्रथम परिचय की भेंट से अधिक रंगीन होती है। अविवाहितों का प्रथम परिचय तो बहुत ही फीका और कोरा व्यावहारिक भी हो सकता है। उसके बाद भी दोनों की आंखें एक-दूसरे के मुख्य अवगुण को परखने में लगी रहती हैं। दोनों को एक-दूसरे की तराज़ू पर तुलना पड़ता है। कठिन परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है। सन्देह और आशंकाओं के झोंके उनके कोमल मन को झकझोर देते हैं। भावनाओं के उतार-चढ़ाव में डूबते-बहते उनकी आत्मा शांति और तृप्ति के सच्चे उल्लास से वंचित रह जाती है।

विवाह-वेदी पर जाने से एक क्षण पूर्व तक भी उनका मन डांवाडोल ही रहता है। एक-दूसरे के समीप रहकर और निरीक्षण-परीक्षण करते-करते वे एक-दूसरे के गुण को जानने की अपेक्षा दोषों को अधिक पहचानने लगते हैं। तुम पूछोगी कि फिर वे विवाह क्यों कर लेते हैं ?—एक-दूसरे के दोषों को थोड़ा-बहुत पहचानते हुए भी क्यों वे विवाह की डोर में बंधना स्वीकार कर

लेते हैं ?

इसका कारण यह है कि उस समय वे जवानी के जोश में केवल शारीरिक आकर्षण से खिंचे हुए चले आते हैं। शील-स्वभाव या चरित्र के गुण-दोषों की परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं समझते, या समझकर भी दोषों को आंखों से ओझल किए रहते हैं। अपने को धोखा दे देते हैं।

लेकिन यह धोखा जल्दी ही सामने आ जाता है। मिलन की पहली घड़ियों का नशा जब उतरने लगता है तो विवेक की आखें गुणों की अपेक्षा दोषों को अधिक स्पष्टता से देखना शुरू कर देती हैं। थोड़े दिनों बाद दोनों को एक-दूसरे में दोष ही दोष दीखने शुरू हो जाते हैं।

दूसरी ओर विवाह के बाद के प्रेम में एक-दूसरे के गुण-दोष की परीक्षा का अवसर ही नहीं आता। इस मिलन को ईश्वरीय संयोग माना जाता है, मनुष्य-कृत संयोग नहीं। विधाता की रचना में गुण-दोष का विवेचन नहीं किया जाता। जिसे ईश्वर ने जो दिया है उसपर सन्तोष किया जाता है, उसे अपनाया जाता है। मन की यह भावना हृदय में अमिट प्रेम का बीज बो देती है। जिस तरह माता-पिता अपनी सन्तान के दोषों से भी प्रेम करते हैं, भाई अपने सहोदर भाई से मोह करता है, उसी तरह पति और पत्नी एक-दूसरे को अपना लेते हैं। वह सम्बन्ध पहले ही अटूट मान लिया जाता है—पति-पत्नी एक-दूसरे के अंग बनकर संयुक्त होते हैं।

अपनत्व की भावना आते ही दोनों का मन एक हो जाता है। मन में द्वित्व या भिन्नता की भावना ही नहीं रहती—दो शरीरों में एक ही आत्मा निवास करने लगती है।

विवाह का यह आदर्श हमारे देश का पुरातन आदर्श है। यह पाश्चात्य आदर्श से बहुत ऊंचा है। यदि मैं यह कहूं कि पाश्चात्य प्रेम की जो चरम सीमा है वह हमारे वैवाहिक प्रेम की प्रारंभिक सीमा है तो अत्युक्ति न होगी।

विवाह : प्राकृत सम्बन्ध

पत्र | ५

Some pray to marry the man they love,
My prayer will somewhat vary;
I humbly pray to heaven above,
That I love the man I marry.

कुछ लोग भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे जिसे प्रेम करते हैं, उससे विवाह कर सकें। मेरी प्रार्थना उनसे भिन्न है। मैं तो यह मानती हूं कि जिस पुरुष से मेरा विवाह हो उससे मैं प्रेम कर सकूं।

प्रिय कमला,

'जब किसीसे दिल मिलेगा तभी विवाह करूंगी'—इस आग्रह को मन से दूर कर दो। विवाह हृदय के मिलने-बिछुड़ने की आंख-मिचौनी का सा खेल नहीं है।

एक बात पूछता हूं तुमसे। यदि दुर्भाग्य से देर तक तुम्हारी तुला पर कोई युवक पूरा नहीं उतरा, तो क्या तुम जीवन-भर अकेली रहोगी? अथवा तुम जिस युवक के प्रति आकृष्ट होगी, वही तुम्हें पत्नी रूप में स्वीकार न करे तो क्या तुम अकेली ही रहोगी?

मेरा विचार है कि अकेले रहने का अर्थ तुम अच्छी तरह समझती होगी। ईश्वर ने किसी भी स्त्री को या पुरुष को अकेले रहने योग्य नहीं बनाया। अकेले रहने की सामर्थ्य का दावा करना इस दावे के समान है कि मैं जन्म-भर भूखा-प्यासा रहकर जीवित

रह सकता हूं।

कुछ दिन के उपवास करने या अल्पाहार की प्रतिज्ञा तो कोई साधारण आदमी भी कर सकता है, किन्तु सर्वथा निराहार रह-कर जीवित रहने का दम्भ बड़े से बड़ा संयमी भी नहीं कर सकता। आहार जिस तरह मनुष्य के शरीर और मन का भोजन है उसी तरह स्त्री-पुरुष का परस्पर सहवास भी उसका भोजन है। इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन तो हो सकता है लेकिन इनका नाश नहीं हो सकता।

हां, याद आ गया—तुमने एक बार कहा था कि इन प्रवृत्तियों का महत्करण हो सकता है; अर्थात् इनका किसी महत्कार्य में इतना संयुक्त हो जाना सम्भव हो सकता है कि छोटे कार्यों से उनको सर्वथा विमुख किया जा सके। इस सम्भावना में मुझे अविश्वास नहीं है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां इस तरह के महत्करण हुए हैं, किन्तु इस प्रयोग के आरम्भ करने से पूर्व मनुष्य को अपने सामर्थ्य की परीक्षा कर लेनी चाहिए। असाधारण शक्तियों को ही ये प्रयोग शोभा देते हैं।

मुझे डर है—कहीं ऐसा न हो कि कभी छोटे-से काम को ही महान मानकर तुम यह प्रयोग शुरू कर दो। मुझे कई लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध में मालूम है कि उन्होंने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए अविवाहित रहने का प्रण किया था। लेकिन अविवाहित रहते हुए संयमित जीवन बिताने में ही उनको इतनी मेहनत करनी पड़ गई कि वे अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए योग्य प्रयत्न ही नहीं कर पाए।

मेरे विचार में तो सच्चा जीवन-साथी पाना भी तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सहायक ही होगा। जीवन-साथी वही

है जो जीवन की हर दिशा में सहायक हो। सहायक बनने के निमित्त ही वह तुम्हारे जीवन में प्रवेश करेगा। तुम्हारे सर्वतोमुखी विकास के लिए वह बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने को तैयार होगा। तभी तो तुम्हारी आत्मा के द्वार उसके लिए खुलेंगे। जो संपर्क परस्पर विकास में सहायक नहीं होता वह सच्चा नहीं होता। वह जीवन-साथी ही क्या जो तुम्हारे जीवन के मनोरथों को पूरा करने में सहायक न हो?

लेकिन, याद रखो कि अपने मनोरथों की रचना करते हुए तुम्हें स्वार्थ को भूलकर कल्याण की भावनाओं का चिन्तन करना होगा। अपने उत्कर्ष की चिन्ता करने का तुम्हें पूरा अधिकार है—किन्तु वह उत्कर्ष दूसरे के मूल्य पर नहीं होना चाहिए। उसका आधार लोक-कल्याण ही होना आवश्यक है। कोई भी सच्चा उत्कर्ष ऐसा नहीं है जिसमें व्यक्ति के साथ लोकमात्र का उत्कर्ष न होता हो और जो नया निर्माण न करता हो।

मनुष्य-जीवन की सार्थकता ही नवीन निर्माण में है। निर्माण किसी भी दिशा में हो, हितकर होता है। निर्माण का प्रकार हर मनुष्य अपनी योग्यतानुसार करता है। जिस कार्य के वह अधिक उपयुक्त होता है वही उसका निजी कार्य बन जाता है।

स्त्री के जीवन का सबसे उत्कृष्ट और विशिष्ट कार्य सन्तान की उत्पत्ति और उसका पोषण करना है। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि वह इसी कार्य के योग्य है। मैं मानता हूं कि वह भी पुरुष के समान अन्य कार्यों में ऊंची से ऊंची पदवी तक पहुंच सकती है। किन्तु सन्तान को जन्म देने और उसके पालन-पोषण में स्त्री का एकाधिकार है; इस काम को वही कर सकती है। हर व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षाएं अपनी विशिष्ट शक्तियों के अनुसार ही होनी

चाहिए। इसलिए स्त्री की महत्त्वाकांक्षा भी इसी दिशा में प्रवृत्त हो तो अच्छा है।

योग्य सन्तान की माता बनने का गौरव दुनिया का सबसे बड़ा गौरव है। जिस देश की लड़कियां इस गौरव को पाने के लिए उत्सुक होंगी, वह देश अवश्य विजयी होगा। मैं जानता हूं— अवस्था आने पर प्रत्येक लड़की के मन में मां बनने की इच्छा जगती है। सुन्दर बच्चे को देखकर हर लड़की आनन्द-विभोर हो जाती है। उसका मन ममता से भर जाता है। तुम भी इसमें अपवाद नहीं हो। अपवाद बनने की कोशिश मत करो। मन की स्वाभाविक वृत्तियों का दमन एक हद तक ही करना चाहिए। उन वृत्तियों का संयम किया जा सकता है, उन्हें मिटाया नहीं जा सकता।

जीवन की स्वाभाविक तरंगों के साथ बहना और उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए चलना ही सुखकर होता है। यह तभी संभव है यदि तुम किसी साथी के हाथ का सहारा लेकर चलोगी। जीवन का संगीत अकेले नहीं गाया जाता, जीवन के कर्तव्य साक्षी की अपेक्षा रखते हैं।

यदि तुम्हें अपने सपनों का साथी नहीं मिला—सपनों का साथी शायद ही किसीको मिलता हो—तो विश्वास करो, वास्तविकता का साथी भी तुम्हारे सपनों को पूरा कर सकता है। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे लिए जिस साथी को चुना है उसे स्वीकार कर लो। तुम्हारे माता-पिता तुमसे अधिक अनुभवी हैं। उन्होंने जीवन देखा है। वे वैवाहिक जीवन के साथी का महत्त्व खूब समझते हैं। यह साथ ऐसा है जिसमें दो दिन की मौज-बहार की अपेक्षा लम्बे समय के उत्तरदायित्व को निभाने की योग्यता

का प्रश्न अधिक महत्त्व का है। हंसने-खेलने वाले सभी साथी अच्छे पति नहीं बन सकते। बल्कि प्रायः अच्छे पति वही बनते देखे गए हैं जो हंसी-खुशी के अवसरों पर भी कुछ गंभीर मुद्रा धारण किए रहते हैं।

"अच्छा साथी किस तरह मिल सकता है ?" यह प्रश्न कई बार मुझसे किया जा चुका है। मैं समझता हूं कि अच्छा साथी ढूंढ़ने से नहीं मिलता। माता-पिता भी अच्छे साथी की तलाश नहीं कर सकते। वे भी केवल अमीर, गरीब या किसी विशेष प्रकार के साथी की तलाश कर सकते हैं। माता-पिता प्रायः लड़की के लिए अमीर घराने के और सदाचारी लड़के की ही तलाश किया करते हैं। हर अमीर और सदाचारी युवक हर लड़की का अनुकूल जीवन-साथी बन सकता है—यही उनकी धारणा रहती है। मैं इस मत से सहमत नहीं हूं। पहले तो अमीरी-गरीबी आपेक्षिक शब्द हैं। फिर, लड़के के घराने की अमीरी का लाभ लड़की को इतना ही मिल सकता है कि वह अपनी शारीरिक ज़रूरतों को पूरी कर सके। जीवन-साथी की मानसिक भूख को अमीरी से कोई तृप्ति नहीं मिलती। होता इसके विपरीत ही है। धनी घरानों में धन का महत्त्व साथी के अस्तित्व को बहुत क्षुद्र बना देता है। जहां धन होता है वहां साथी भी बहुत होते हैं, सेवक भी होते हैं और खुशामदी भी। उनकी सदा भीड़-सी लगी रहा करती है। उन सेवकों, मुसाहबों की भीड़-भाड़ में जीवन-साथी का स्थान बहुत उपेक्षित-सा हो जाता है। मैं कई धनी घरानों के युवकों को जानता हूं। उनकी पत्नियां बड़ी सुन्दर और बहुत शालीनता-सम्पन्न हैं। कोई साधारण व्यक्ति उनसे बात करके भी अपने को धन्य मान सकता है। किन्तु, इन धनग्रस्त युवकों को उनकी पर-

वाह ही नहीं होती। उनका समय शहर के क्लबों में ताश खेलने और नृत्यघरों की नर्तकियों के साथ बीतता है। ऐसे घरों में पत्नियों के जीवन का अर्थ केवल रोटी-कपड़े से हैं—आश्रय तो मिल जाता है, लेकिन जीवन का साथी नहीं मिलता। मैंने अनेक बार इन पत्नियों के मुख से सुना है : "इससे तो गरीबी की ज़िन्दगी हज़ार बार अच्छी थी।" गरीबी में साथी की कद्र होती है। दोनों को एक-दूसरे की चाह होती है। कदम-कदम पर एक-दूसरे के सहारे की ज़रूरत महसूस होती रहती है। हाथ में हाथ लिए दोनों को अपने कठिन मार्ग पर आगे बढ़ना पड़ता है। पत्नी अपने हाथ से रोटी बनाकर न खिलाए तो पति भूखा रह जाए और पति अपने हाथ से कमाकर न लाए तो घर का दीपक न जले—इतनी लाचारी दोनों को एक-दूसरे के प्राणों का अवलम्बन बना देती है। पति के प्राण पत्नी में और पत्नी के प्राण पति में रहते हैं। इतनी बड़ी अंधेरी दुनिया में उनका दूसरा कोई आधार नहीं होता। जहां यह बेवसी होती है, वहीं प्रेम का स्रोत बहता है।

इसीलिए मुझे उन लड़कियों के मां-बाप की मूर्खता पर दुःख होता है जो अपनी भोली लड़कियों के लिए अपने से बहुत अमीर घरानों के द्वार खटखटाते हैं। जो लड़कियां अपने लिए साथी का चुनाव करते हुए उनके धन को तराज़ू में तोलती हैं वे दूसरे पलड़े में अपने सुखों का मोल लगाती हैं। अपने जीवन के सुख को पराये धन के बट्टों में तोलना मूर्खता की पराकाष्ठा है। पिछले ज़माने में वीर-पूजा होती थी। आजकल धन-पूजा चल पड़ी है। धन की चमक से चकाचौंध होकर उसमें कूद पड़ना आग की भट्ठी में कूदना है। धन की अधिकता और जीवन-साथी में स्वाभाविक वैर है।

'सदाचार' नाम से जिन विशेष गुणों की परख की जाती है

वह परख भी सच्ची नहीं होती। मैं समझता हूं कि बीस-पचीस वर्ष की उम्र तक कोई भी युवक ऐसा दुराचारी नहीं हो सकता कि वह किसी लड़की के जीवन-साथी बनने के अयोग्य हो जाए। भूलें सभी-से होती हैं—किसीसे कम, किसीसे अधिक। उन भूलों के आधार पर किसीको दुराचारी मान लेना उन सब भूलों से बड़ी भूल है। होता यह है कि आचार-सम्बन्धी बातों में लोग बड़े चौकन्ने रहते हैं। ऐसी एकाध घटना को उपन्यास का रूप दे देना उनके बायें हाथ का खेल होता है। इसमें उन्हें बड़ी दिलचस्पी होती है। तिल का ताड़ बन जाता है। निर्दोष बातें भी साज़िशों का रंग पकड़ लेती हैं। कुछ लोग जलन से और कुछ संकीर्णतावश किसीके हर काम का अर्थ उल्टा लगाकर उसे दुराचारी बना देते हैं। मेरा विश्वास है कि प्रायः सभी युवक स्वस्थ विचारों वाले होते हैं। स्वभाव से ही मनुष्य सदाचारी होता है। उसे शुद्ध हवा में सांस लेना और ऊंचे विचारों में उड़ना अच्छा लगता है। वह वीरता और बलिदान के कार्यों से प्रेम करता है। वह साहसी, उत्साही और सहिष्णु होता है। आदर्शों के लिए उसके मन में पूजा के भाव होते हैं। ये गुण उसकी आत्मा में बीज रूप से सदा रहते हैं। कहीं बाहर से उनके बीज लाकर मनुष्य-हृदय में खेती नहीं करनी पड़ती। बाद में जीवन की अवस्थाएं, परिस्थितियां मनुष्य-प्रकृति में विकार ले आती हैं और मनुष्य दुराचारी हो जाता है।

फिर भी मेरा विश्वास है कि युवावस्था तक ये विकार कभी भी मनुष्य के स्वभाव का अंग नहीं बनते। इसलिए किसी भी युवक को दुराचारी मानकर 'परित्यक्त' घोषित नहीं किया जा सकता। आजकल तो कुछ स्वतन्त्र और उदार विचार वालों को भी दुराचारी कह दिया जाता है। आज भी ऐसे लोग हैं जो लड़कियों को

शिक्षा देना चरित्र के लिए घातक समझते हैं। जिनकी दृष्टि में पर्दे की प्रथा अच्छी है, मुंह ढंककर चलने में ही सतीत्व की रक्षा मानते हैं। ये लोग जब किसी लड़के-लड़की को हंसता-बोलता देख लें तो उन्हें चारों ओर पाप की छाया-मूर्तियां दिखाई देने लग जाती हैं। मनुष्य-चरित्र पर इतना अविश्वास करना स्वस्थमना व्यक्ति के लिए स्वाभाविक नहीं है। लेकिन परिस्थितियों ने या परम्परागत संस्कारों ने जिन लोगों को इतना संशयशील बना दिया है उनका दृष्टिकोण युक्तियों से बदला नहीं जा सकता। हमें उनको भला-बुरा नहीं कहना चाहिए, लेकिन उनके संकीर्ण मार्ग का अन्धानुसरण करने से भी इन्कार कर देना चाहिए।

जिस युग में हम रहते हैं वह बुद्धि-युग है। चार आदमी जिसे दुराचारी कहते हैं वह संभव है ऐसा ही हो, लेकिन यह भी संभव है कि यह आरोप सर्वथा निराधार हो। सब संभावनाओं की परीक्षा करके ही हमें ऐसी किंवदन्तियों पर विश्वास करना उचित है।

यदि उसमें कभी चरित्र-सम्बन्धी निर्बलता आई है, तो भी वह जीवन-साथी बनने के अयोग्य नहीं हो जाता। मनुष्य की शक्तियां जब अनुकूल मार्ग में जाने की सुविधाएं नहीं पातीं तो प्रतिकूल मार्ग में चल पड़ती हैं। मस्तिष्क जब निर्माण-कार्य में प्रवृत्त नहीं होता तो विनाश-कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी प्रतिकूलताओं में चलते हुए ही मनुष्य दुश्चरित्र होता है। उसके आदर्शों का स्वप्न जब संसार की कठोरताओं से भंग हो जाता है तो उसका मन विक्षिप्त हो जाता है। टूटे हुए दिल का कोई साथ नहीं देता। सच्चा साथ न पाकर वह झूठे दिल-बहलावों में डूब जाता है। निराश मन ही दुश्चरित्र होता है। निराशा के बादल दूर होने पर उसका चरित्र फिर चमक सकता है। सच्चे साथी

के पाते ही उसका हृदय फिर ऊंचे आदर्शों को अपना सकता है।

कई बार विवाह में अच्छा जीवन-साथी मिलते ही युवक का जीवन बदल जाता है। सूर्य की किरणों को छूकर जिस तरह फूलों की कलियां खिल उठती हैं उसी तरह मनुष्य की अधखिली शक्तियां विकसित हो उठती हैं। यह विकास ही सच्चे साथी का सूचक है। ऐसी अवस्था में तुम्हें कितना गौरव अनुभव होगा—कितना आत्मपरितोष मिलेगा !—एक डूबते जीवन को सहारा देकर तुमने उसको सदा के लिए उपकृत कर दिया। वह कभी इस उपकार को नहीं भूलेगा। तुम्हारी कुर्बानी उसे सदा तुम्हारे प्रति प्रेमाकुल बनाए रखेगी। कुर्बानी की नींव पर खड़ा हुआ प्रेम का महल कभी डगमग नहीं होता। प्रेम का रास्ता ही कुर्बानी का रास्ता है।

मुझे मालूम है तुममें कुर्बानी की योग्यता है। इसके लिए जिस चरित्र-बल की आवश्यकता है वह तुममें भरपूर है। साहस और सहिष्णुता की भी तुममें कमी नहीं है। दुनिया से अलग रास्ता बनाने में तुम्हें डरना नहीं चाहिए। दुनिया तो केवल सरलतम मार्ग चलना जानती है। लेकिन दुनिया कठिन रास्तों पर चलने वालों की सराहना करना भी जानती है। कठिनाइयों को गले लगाने वाले ही यशस्वी बनते हैं। वही प्रेम और पूजा के भागी बनते हैं।

साथी का चुनाव करना है तो ऐसे साथी का चुनाव करो जिसे तुम्हारा साथ उन्नति और उत्कर्ष के नये मार्ग पर डाल दे। तुम वह पारस मणि बन जाओ जो पाषाण को स्वर्ण बना देती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक आत्मबल होता है—पुरुष स्वभाव से लोभी और बहिर्मुखी होता है; स्त्रियां सन्तोषमयी

और अन्तर्मुखी होती हैं। किसीको सच्चरित्र बना देना तो उनके लिए बहुत ही साधारण बात है।

समान शील-स्वभाव के युगल ही सुखी दाम्पत्य जीवन निभा सकते हैं—इस विश्वास पर भी मुझे बहुत सन्देह है। मैं किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में दूसरे से इतनी समानताओं की कल्पना नहीं करता कि वे दोनों उन समानताओं के बल पर ही जीवन में समता रख सकें। न ही मैं किन्हीं दो व्यक्तियों में इतनी विभिन्नता देखता हूं कि यही दोनों की विषमता का कारण बनी रहे। दोनों का शील-स्वभाव कितना ही बेमेल हो, मनुष्य होने की ईश्वरकृत समता में तो दोनों ही बंधे होते हैं। दोनों में एक-सी आधारभूत प्रवृत्तियां होती हैं। परस्पर आकर्षण भी दोनों में सहज होता है। इतनी समानताओं के होते हुए छोटी-छोटी विषमताओं को तूल देना तभी होता है जब किसी स्वार्थवश दोनों एकसाथ नहीं रहना चाहते, या उनमें से एक दूसरे को गुलाम बनाकर रखना चाहता है, या उनमें प्रेम के स्थान पर घृणा ने स्थान ले लिया है।

मेरी धारणा यह है कि घृणा पहले आती है और विषमताओं की अनुभूति बाद में चुभने लगती है। विषमताओं के ही कारण कभी घृणा नहीं पैदा होती। विषमताओं की विद्यमानता में भी प्रेम रह सकता है, समता रह सकती है। प्रेम में विषमताओं से भी प्रेम हो जाता है। विषमता तो दूर, दुर्गुणों से भी प्रेम हो जाता है।

यह भी सच नहीं है कि समान रुचि के स्त्री-पुरुष में ही प्रेम होता है। स्त्री-पुरुष का प्रेम व्यावहारिक व व्यावसायिक रुचि की अपेक्षा नहीं करता, उन सबसे बड़ी रुचि दोनों के पारस्परिक मिलन की रुचि है—जो सबमें एक-सी रहती है। शेष रुचियां पीछे

रह जाती हैं।

यदि रुचि की समानता साथी के चुनाव में सहायक हो तो एक ही काम में लगे स्त्री-पुरुषों का ही मेल हुआ करे। इसके विपरीत हम यह देखते हैं कि समव्यवसायी स्त्री-पुरुष आपस में शादी नहीं करते। इसमें भी कारण है। पुरुष अपने घर में आकर अपने व्यवसाय की कशमकश को भूल जाना चाहता है। घर में उसकी चर्चा भी बुरी लगती है। उसके लिए घर का स्वर्ग दुनिया के घात-प्रत्याघातों से भिन्न कल्पना-लोक में बसा होता है। स्त्री को भी वह संसार के स्पर्श से दूर पवित्र देवी समझकर पूजता है। संसारी समानताएं या विषमताएं उसके प्रेम-जगत् को स्पर्श नहीं करतीं।

अतः साथी के चुनाव में मैं समरुचि होने की शर्त को विशेष महत्त्व नहीं देता। सच तो यह है कि इस चुनाव में किसी भी शर्त को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। साधारणतया स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन वाले कोई भी स्त्री-पुरुष पति-पत्नी सम्बन्ध को सफलता के साथ निभा सकते हैं।

विवाहित जीवन की सफलता साथी के चुनाव पर ही नहीं बल्कि विवाह के उपरान्त दोनों की मनःस्थिति पर ही निर्भर है। वैसे भी, चुनाव द्वारा निर्धारित सम्बन्धों की अपेक्षा प्राकृत संबंध अधिक स्थायी और गहरे रहते हैं। पिता-पुत्र, भाई-बहिन, भाई-भाई के सम्बन्ध चुनाव से नहीं बनते। प्रेम-सम्बन्धों में चुनाव का कहीं भी स्थान नहीं है। मैं और आप एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं; हमारा यह सम्बन्ध भी चुनाव का परिणाम नहीं है। मनुष्य-जाति में भी जन्म लेना मेरी इच्छा से नहीं हुआ।

सृष्टि का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य मनुष्य के चुनाव से नहीं

हो रहा। संसार के सभी महत्त्वशाली सम्वन्ध प्राकृत सम्वन्ध हैं। क्यों न पति-पत्नी के सम्बन्ध को भी प्राकृत सम्वन्ध मान लिया जाए और इसमें यथासम्भव कम हस्तक्षेप किया जाए ? क्यों न इस सम्वन्ध को भी वही ऊंचा दर्जा दिया जाए जो अन्य प्राकृत सम्वन्धों को प्राप्त है। चुनाव का अधिकार लेकर हम उसका महत्त्व कम करते हैं। छोटी-छोटी समानताओं की तराज़ू पर तोलकर हम उसका मूल्य कम करते हैं—उसे सस्ता बनाते हैं।

विवाह को प्राकृत सम्वन्ध मानने का यह अर्थ नहीं है कि उसे सुखकर बनाने के लिए यत्नसाध्य कौशल से काम न लिया जाए। प्राकृत सम्बन्ध भी सर्वत्र सुखदायी नहीं होते। पिता-पुत्र भी स्वार्थवश एक-दूसरे के वैरी हो जाते हैं। इतिहास के कई पृष्ठ पिता-पुत्र के खून से रंगे हुए हैं। भाई-भाई का वैर तो जग-विख्यात है ही। इन सम्वन्धों को सुखकर रखने के लिए भी ईमानदारी की और व्यावहारिक कुशलता की आवश्यकता है।

विवाह को सफल बनाने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है, कौशल से काम लेना पड़ता है। उसकी चर्चा तब करूंगा जब तुम्हारे विवाह की बात पक्की हो जाएगी।

इस पत्र में तो मैं तुम्हें यही बतलाना चाहता था कि जीवन-साथी के बिना जीवन की यात्रा नहीं कटती। मनचाहे साथी की प्रतीक्षा में जवानी की अनमोल घड़ियां नष्ट मत करो। वही 'मन का मीत' बन जाएगा जिसे तुम मन में जगह दोगी। उसका चुनाव माता-पिता पर छोड़ना भी भाग्य पर छोड़ना है। इन सम्वन्धों में भाग्य का फैसला ही अन्तिम होता है। विश्व के सभी महत्त्व-

शाली सम्बन्ध भाग्य से बनते हैं। अन्य प्राकृत सम्बन्धों की तरह विवाह को भी प्राकृत सम्बन्ध मान लो।

जब तुम्हारे विवाह की बात निश्चित हो जाएगी तो अगला पत्र लिखूंगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

विवाहकी मानसिक तैयारी — पत्र | ६

पारिवारिक प्रेम सांसारिक जीवन के समस्त कल्याणमय मार्गों का आरम्भ और संस्कृति के विकास का स्रोत है।

प्रिय कमला,

तुम्हारा वह पत्र मिला जिसमें तुमने लिखा है—"मेरे भाग्य का निर्णय हो गया, सगाई हो गई!" विवाह को भाग्य-निर्णय कहना अनुचित नहीं। सम्पूर्ण जीवन की सफलता इसपर निर्भर रहती है। इस निर्णय में मुख्य भाग तुम्हारे माता-पिता ने लिया है, यह जानकर भी संतोष हुआ। किन्तु मुझे निश्चय है कि अंतिम निर्णय से पूर्व उन्होंने तुम्हारी सहमति प्राप्त कर ली होगी। भावी पति की एक झलक तो तुमने देखी ही होगी और उनकी शिक्षा-दीक्षा की भी पूछताछ कर ली होगी।

एक झलक में रूप-रंग की परीक्षा तो नहीं हो सकती—फिर भी यह रसम बुरी नहीं। कुछ चेहरों की बनावट पहली नज़र में ही इतनी अरुचिकर लगती है कि दूसरी बार देखने को मन नहीं चाहता। प्रथम दृष्टि में प्रीति हो सकती है तो अप्रीति भी हो सकती है। इस अप्रीति को प्रेम में बदलना असंभव कार्य है। जीवन-भर इस संघर्ष को जारी रखना कभी भी सुखकर नहीं हो सकता। यह कुछ क्षण की पहली मुलाकात कम से कम ऐसी दुर्घटनाओं से अवश्य पति-पत्नी की रक्षा कर सकती है। इस भेंट के बाद

दोनों अपने मन की बात माता-पिता से कह सकते हैं और माता-पिता अपनी सन्तान की इच्छा के विरुद्ध नहीं चलते।

यह भेंट प्रायः मौन ही होती है और होती भी माता-पिता की निगरानी में कुछ क्षण की है। इसलिए इसमें एक-दूसरे को जानने-पहचानने का तो अवसर होता ही नहीं है। जब तक लड़के-लड़कियों के स्वतन्त्र चुनाव की परिपाटी नहीं चलती—तब तक के लिए यह मध्यम मार्ग भी उचित ही है। इस पहली भेंट के कारण भी कई युवक-युवतियों का जीवन जन्म-भर के नारकीय संघर्ष से बच जाता है।

सगाई होने का मतलब यह है कि आज से तुमने किसीको अपने सुख-दु:ख का एकमात्र साथी मान लिया हैं; जीवन-भर के लिए मान लिया है—एक मूर्ति को अपने हृदय-मंदिर में प्रतिष्ठापित कर लिया है; उसके लिए तुम्हारी आत्मा के द्वार खुल गए हैं। शरीर और मन से तुमने उसके आगे आत्मार्पण कर दिया है।

यही आत्मार्पण प्रेम की निशानी है। प्रेम जीवन का अर्पण चाहता है। जीवन का अर्पण जीवन से भी अधिक प्रिय वस्तु के लिए किया जाता है। तुम्हारा साथी आज से तुम्हें अपने जीवन से भी अधिक प्रिय हो गया है।

ऐसी ही दिव्य भावनाएं तुम्हारे साथी के मन को तरंगित कर रही हैं। उसकी आत्मा तुम्हारे प्रेम के प्रकाश से जगमगा उठी है। उसके मन की तारें तुम्हारे संगीत से झनझना उठी हैं। उसके रोम-रोम में तुम्हारे सौंदर्य का सुवास भर गया है। वह तुम्हें पाकर आज अपने को दुनिया का बादशाह मानने लगा है।

एक दिन पहले यहां सब सुनसान था—एक दिन बाद दो दिलों की दुनिया में ऐसा संगीत भर गया कि दुनिया के सब वाद्य फीके

पड़ गए। जिसके साथ रहने की कल्पना से शरीर और मन इतने पुलकित होते हों, उसके संग रहना कितना सुखद होगा !

इस स्वप्न में ही सारा जीवन बीत जाए तो मनुष्य-जीवन का माधुर्य देवताओं की ईर्ष्या का विषय बन जाए। पति-पत्नी का आजीवन साथ यदि प्रारम्भिक काल की मधुरताओं से भरपूर रहे तो सारे त्रिलोक का राज्य भी उसके सामने फीका पड़ जाए।

इस स्वप्न को टूटने न देना। इसकी मिठास में कमी न होने पाए। तुमने अभी यह स्वप्न ही देखा है। तुम्हारा स्वप्न बना रहे—यही ईश्वर से प्रार्थना है। लेकिन प्रार्थनाओं के बल पर गृहस्थ की नाव नहीं चलती। लहरों के थपेड़ों से बचते हुए गृहस्थ की महानदी को पार करना बड़े कौशल और पुरुषार्थ का काम है, पग-पग पर कठिनाइयां आती हैं; ठोकरें खानी पड़ती हैं। मैं चाहता हूं कि तुम्हारी कठिनाइयां कुछ आसान हो जाएं। इसीलिए ये पंक्तियां लिख रहा हूं। मेरा अनुभव और अध्ययन तुम्हारे मार्ग को कुछ भी सरल बना सकेगा तो मैं अपना प्रयत्न सफल मानूंगा।

अब, वाग्दान के बाद विवाह की तैयारियां शुरू हो गई होंगी। तुम्हारे विवाह का दहेज बन रहा होगा। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिए मोतियों और हीरों के आभूषण बनवा रहे होंगे। सोने-चांदी के तारों से सजी साड़ियां खरीद रहे होंगे। सिंगारदान और इत्रदान के नये-नये नमूनों के पार्सलों से घर भर गया होगा। माता-पिता के मोह की इन निशानियों का अर्थ यह कभी न समझना कि विवाह की माला रत्नजटित आभूषणों से पिरोई जाती है या विवाह का उपवन शीशियों में बन्द इत्रों से सुवासित होता है।

कच्ची उम्र की लड़कियां इस नये साजबाज को देखकर यह

समझने लगती हैं कि उनकी आत्मा पर माता-पिता ने जिस कठोर संयम का अंकुश रखा हुआ था वह आज से उठ गया है। आज से अपने मन पर लगाम रखने की आवश्यकता का अन्त हो गया है। विवाह की स्वीकृति मिलते ही उन्हें भोग को प्रोत्साहन देने वाले विचारों को मन में लाने या उनका चिन्तन करने की छूट मिल गई है। माता द्वारा भोग-प्रधान वस्तुओं का घर में प्रतिदिन संग्रह होना उनके मन में यही प्रभाव डालता है। इसमें माता-पिता का ही दोष है—किन्तु उसका कुफल भोगना पड़ता है सन्तान को।

तुम्हारे मन में साहस हो तो तुम अपने माता-पिता को धन के इस अपव्यय से बचा सकती हो। दहेज़ की प्रथा का प्रारम्भ इसलिए हुआ था कि कन्या को माता-पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। दहेज़ के रूप में ही उसे दातव्य धन दे दिया जाता था। लड़कियों को भी उत्तराधिकार मिलने पर इस प्रथा की अनिवार्यता नहीं रहेगी। हर्ष की बात है कि अब तो लड़कियों को भी जायदाद में भागीदार होने का कानून बन गया है। मेरी राय है कि समझदार लड़कियों को अपने माता-पिता से आग्रह करके दहेज़ के इस वर्तमान रूप को बदलवा लेना चाहिए। वह दहेज़ व्यर्थ के कीमती पत्थरों या कपड़ों के रूप में न देकर यदि धन के रूप में ही दिया जाए तो उसका सदुपयोग हो सकता है।

मेरा अनुभव है कि दहेज़ की चीज़ों का अधिकांश केवल दिखावट और शोभा के ही प्रयोजन में नष्ट हो जाता है। चांदी के वर्तन और जरी की साडिय़ां विवाह की निशानी बनकर या तो जन्म-भर तालों में वन्द रहती हैं अथवा अगली शादी में

हस्तान्तरित होती रहती हैं। मैंने कई घर देखे हैं जिनकी रसोई में लोहे की एक पतीली भी टूटी-फूटी ही मिलेगी लेकिन दो मज़बूत तालों वाले सन्दूक में चांदी की प्यालियां दर्जन दो दर्जन पड़ी होंगी। पत्नी के शरीर पर बदरंग फटी-उधड़ी-सी साड़ी होगी लेकिन सन्दूक में सोने के सितारों से सजी कीमती साड़ियों के जोड़े चैन से पड़े होंगे। उन वस्त्रों की चमक-दमक ही पति-पत्नी की वर्तमान स्थिति के अनुकूल नहीं होती। इसलिए वे उन्हें नहीं पहनते। उन दमकती साड़ियों की अपेक्षा मामूली धोतियां उनके लिए अधिक उपयोगी होतीं।

मैं यह नहीं कहता कि विवाह की तैयारियों में चमकीले आभूषणों और कपड़ों का स्थान ही न हो, किन्तु मेरी राय में इन्हें इतना महत्त्व देना लड़की की मानसिक अवस्था में एक विकार-सा पैदा कर देता है। लड़कियां आभूषणों को निरा आभूषण ही नहीं, शरीर की सजावट का सामान समझती हैं। इत्र और सुवासित पाउडरों के संग्रह का काम भी उनकी धारणा को पुष्ट करता है। उनका यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि उन्हें न केवल अपने मनोविकारों को निरंकुश बनाने की छूट मिल गई है बल्कि उनकी दबीं आग को—भोग की प्रवृत्तियों को—प्रज्वलित करने का उत्साह भी दिया जा रहा है। उन्हें यह प्रतीति होने लगती है कि आज से उनका शरीर किसीके भोग के लिए तैयार किया जाएगा।

इसका इशारा पाते ही उनके रोम-रोम में आकांक्षा के अगणित दीप जल उठते हैं। विवाह-विधि सम्पन्न होते ही वे उस आकांक्षा की चरम सीमा तक पहुंचने का इन्तज़ार करने लगती हैं।

यह आकांक्षा पहले केवल अपने जीवन-साथी के निकट आने

की होती है। जिसे उसने मन का देवता बनाया है उसके निकट सशरीर रहने की उत्सुकता ही उसे पुलकित कर देती है।

लेकिन, कामान्ध पुरुष उसकी इस उत्सुकता का दुरुपयोग करते हैं। प्रथम मिलन में ही वे अपने कामज्वर को शान्त कर लेते हैं। लड़कियां कभी इस प्रसंग के लिए शरीर व मन से तैयार नहीं होतीं।

काम-विज्ञान की जिन पुस्तकों में यह लिखा है कि प्रथम रात्रि में ही स्त्री-पुरुष का सहवास हो जाना चाहिए, उन पुस्तकों को फाड़कर फेंक देना ही उचित है। मनुष्यता ही नहीं—पशुता भी इसके लिए इजाज़त नहीं देती।

विवाह के बाद एकान्त मिलन की पहली रात का गृहस्थ-जीवन में बड़ा महत्त्व रहता है। वह रात एक-दूसरे को जानने, पहचानने और यह प्रण करने की रात है कि हमारा सम्बन्ध केवल आत्मा का सम्बन्ध है। हम सुख-दुःख के सच्चे साथी रहेंगे। हम एक-दूसरे के उत्कर्ष में कभी बाधक नहीं होंगे—सदा सहायक रहेंगे। हम एक-दूसरे की भूलों को क्षमा करते हुए अपनी सहानुभूति सदा एक-दूसरे के लिए जागरित रखेंगे।

विवाह की वेदी पर अग्नि को साक्षी रखकर और हज़ारों लोगों की उपस्थिति में तुमने जो प्रण किए थे वह केवल एक रस्म अदा की थी—पुरोहित के शब्दों को बिना उनका अर्थ जाने दोहरा दिया था। पहली रात के एकान्त मिलन में उन प्रतिज्ञाओं का स्मरण करो। इस समय केवल अपने प्रेमी को साक्षी रखकर उनका ध्यान करो। उसकी आंख से आंख मिलाकर एक बार फिर इन वचनों को दोहराओ, "मैं तुम्हारे सुख-दुःख की सदा संगिनी रहूंगी।" वह भी यही प्रतिज्ञा दोहराएगा। इस प्रतिज्ञा में कितना

रस है, कितना आश्वासन है, यह तुम्हारी आत्मा का उल्लास प्रकट करेगा।

पहली रात के मिलन के लिए मैं एक सलाह और अवश्य दूंगा। तुम्हारे शयन-कक्ष में तुम्हें एक पुष्प-शय्या तैयार मिलेगी। तुम्हारे पति की बहनों व सहेलियों ने अगणित पुष्पमालाओं से उसे तैयार किया होगा। सारा कमरा उन फूलों की सुगन्ध से महक रहा होगा। सुगन्ध में मादकता होती है। शायद तुम्हारे मन-मदन के स्वागत के लिए ही यह समारोह किया गया है। लेकिन तुम्हें इस मादकता में अपने शरीर व मन को डुबो नहीं देना है। यह फूलों की सेज तुम्हारा वधस्थल नहीं है। इसपर इस तरह न बैठना जिस तरह बलिदान का पशु यज्ञ की सुसज्जित वेदी पर चढ़ता है। पुराने ज़माने में सोने-चांदी से सजाकर पशु का वध किया जाता था। उसे पशुमेध यज्ञ कहते थे। विवाह कोई स्त्री-मेध यज्ञ नहीं है। लेकिन होता यह है कि रत्न-जटित वधू जब पुष्प-शय्या पर मूक भाव से बैठ जाती है, तो पुरुष उसे केवल अपनी कामना-शान्ति का साधन समझ लेता है।

शय्या पर जड़ पत्थर की तरह बैठ जाना वधुओं के लिए उचित नहीं है, उन्हें झूठा संकोच छोड़कर अपने नव-परिचित पति से उसी तरह बातचीत करनी चाहिए जिस तरह किसी नये मित्र से की जाती है। मनोरंजक वार्तालाप से सारे वातावरण में नई स्फूर्ति भर जाएगी। मेरा तो विश्वास है कि युवक के साथ उसकी नव-विवाहिता वधू जब मित्रवत् व्यवहार करेगी, दिल-चस्प बातों में लग जाएगी, तो उसका मन अधिक स्वस्थ रहेगा। काम के लिए वह इतनी शीघ्रता से प्रवृत्त ही नहीं होगा। मान-सिक उल्लास मिलने के बाद शारीरिक भोग की उत्कंठा ही नहीं

रहेगी उसे।

मैं उन विचारकों से सहमत नहीं हूं जो स्त्री-पुरुष के प्रत्येक सम्बन्ध में यौन-आकर्षण का बीज देखते हैं। उन्हें तो भाई-बहन और माता-पुत्र के सम्बन्धों में भी वासना का अंश दिखाई देता है। इसके विपरीत मेरा तो विश्वास है कि पति-पत्नी के आकर्षण में भी वासना की अपेक्षा निर्मल प्रेम का ही महत्त्व अधिक है। जिस दम्पती के बीच वासना का आकर्षण निर्मल प्रेम की अपेक्षा अधिक प्रबल होगा, उसका स्थायित्व सदा संदिग्ध बना रहेगा। उसके बीच मनोमालिन्य की मात्रा अधिक रहेगी।

यहां मैं तुम्हें यह उपदेश नहीं दूंगा कि तुम अपने हृदय से वासना का मूल नाश कर दो या तुम्हारे पति-प्रेम में कामना का अंश भी नहीं होना चाहिए, फिर भी यह अवश्य कहूंगा कि पति-पत्नी में भी कामनारहित प्रेम संभव है। वासना के बिना भी दोनों एक-दूसरे को चाह सकते हैं। विवाह का उद्देश्य वासनाओं की परितृप्ति नहीं, बल्कि वासनाओं को निर्माण के महत्कार्य में लगाना है।

विवाह के तुरन्त बाद के सप्ताहों में तुम प्रेम को वासना-रहित बनाने का जितना यत्न करोगी उतना ही उसे स्थायी बनाने में सफल होगी। यह समय बड़ा नाज़ुक होता है। इन दिनों यदि वासनाओं की आग में घी की आहुति दे दी जाए, तो उनकी लपटों में मनुष्य-हृदय की कोमल भावनाएं जलकर राख हो जाती हैं। भावनाओं की पतली डोर से ही दो दिल बंधे होते हैं। डोर के टूटते ही दिलों के मनके पृथ्वी पर बिखर जाते हैं। कामनाओं का चुम्बक शारीरिक संयोग का जनक हो सकता है, आत्मिक संयोग का नहीं। वासनाओं का आकर्षण बहुत ही

क्षणिक होता है। परितृप्ति ही उसके क्षय का कारण बन जाती है।

विवाह का अर्थ जीवन-साथी का मिलन न होता तो मैं इस क्षणिक सुख के आकर्षण से तुम्हें सावधान करने की इतनी आवश्यकता न समझता। क्षणिक सुख के लोभ से विवाह करना उतनी ही मूर्खता है जितनी कि एक बूंद प्यास के लिए कुएं में छलांग मारना। यह मार्ग ही क्षणिक सुख का नहीं है। उसकी राह तो दूसरी है।

तुमने जीवन-संगी पाने के लिए विवाह किया है इसीलिए तुम्हें विवाहित जीवन को सदैव सुखी रखने के उपायों पर कुछ लिख रहा हूं। यह लिखने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है, जब से 'हनीमून' मनाने की प्रथा चल पड़ी है। विवाहित दम्पती को संसार की आंखों से दूर, एकान्त में सैर-विहार की स्वतन्त्रता ही 'हनीमून' की यह कल्पना मानी जाती है। 'हनीमून' की यह कल्पना विनाश से भरी है। अनुभवहीन युवक-युवती अपने यौवन का सम्पूर्ण मूलधन इस भोग की पहली ही बाज़ी में हार देते हैं। वर्षों के परिश्रम से बांधी हुई वासनाओं का द्वार खोल दिया जाता है—जिसके ज्वार में नैतिकता, सदाचार, संयम आदि सभी मानवीय गुण बह जाते हैं। भोग के क्षणिक चमत्कार में उसे अपने पुराने संयत जीवन का सम्पूर्ण कार्यक्रम एक धोखा लगने लगता है। उनकी मानसिक अवस्था कुछ से कुछ हो जाती है। सज्जनता, शालीनता और मनुष्यता की पोशाक को केंचुली की तरह उतारकर वह मुक्तभोगी युवक पशुवृत्तियों को प्राकृत मानकर, उनका पोषक बन जाता है।

हनीमून की इस परिपाटी का पोषक न होते हुए भी मैं हनी-

मून की मूल भावना का समर्थक हूं। मेरे विचार में विवाह के बाद पति-पत्नी को कुछ दिनों के लिए कोलाहलभरी दुनिया से दूर किसी एकांत में अकेले प्रवास करने का अवसर अवश्य देना चाहिए। इस एकांतवास में दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट हो जाएंगे।

किन्तु यह एकांत सच्चे अर्थों में एकांत होना चाहिए। किसी पर्वतीय प्रदेश की छोटी-सी कुटिया या किसी गांव के पास कोई झोंपड़ी—इसके लिए आदर्श स्थान है। यहां न कोई सेवक साथ में हो न ही होटल की सुविधाएं हों। दोनों मिलकर अपना काम करें। यह प्रदेश अजनबी-सा हो तो और भी अच्छा है, जिससे पड़ोसियों की सहायता पर भी वे निर्भर न रहें।

ऐसे निर्जन में ही दोनों घर बनाने की शिक्षा ले सकेंगे और ऐसे एकांत में ही दोनों को मिलकर प्रकृति के विशाल सौंदर्य की उपासना का अवसर मिलेगा।

संयुक्त परिवार का भय

पत्र | ७

अन्योन्यसमुपसृम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातय: सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥
—महाभारत।

सरोवर के कमल की तरह स्वजनों का भी परस्पर साहाय्य और परस्पर सहयोग से ही उत्कर्ष होता है।

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र की कुछ पंक्तियां पढ़ने के बाद ही मैं तुम्हें सगाई की बधाइयां और नसीहतें लिखने बैठ गया था। बाद में देखा तो उसकी अन्तिम पंक्तियों पर नज़र गई। उसमें तुमनें लिखा है कि "मुझे ऐसा लगता है कि मैं भावी पति के साथ तो सुख से रह सकूंगी, लेकिन ससुराल जाने से मुझे डर लगता है। मैंने सुना है कि उस घर की ननदें बड़ी तेज़ स्वभाव की हैं। मैं उनका तिरस्कार सहन नहीं कर सकूंगी।" तुमने मुझसे इस सम्बन्ध में राय पूछी है।

तुम्हारी समस्या अनोखी नहीं है। यह समस्या आजकल हर घर की समस्या बनी हुई है। हमारे सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन आ रहे हैं वे संयुक्त परिवार की प्रणाली के अनुकूल नहीं हैं। सच तो यह है कि संयुक्त आय-व्यय की सुविधाओं के उठने के बाद पारिवारिक संयुक्तता को बनाए रखना बहुत कठिन काम हो गया है। फिर भी, मैं मानता हूं कि जहां तक हो सके इसे

निभाने का यत्न करना चाहिए।

वे तुम्हें तिरस्कार से क्यों देखेंगी ? उनको तुमसे जलन क्यों होगी ? अभी से तुम ऐसी कल्पनाएं क्यों करने लगी हो ? ऐसी आशंकाएं व्यर्थ ही तुम्हारे मन को विषाक्त कर देंगी। इन सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास न करो। कोई किसीसे अकारण द्वेष नहीं करता। प्रायः कल्पित भय या सन्देह ही द्वेष के कारण बन जाते हैं। प्रेम का उत्तर कभी घृणा से नहीं मिलता। प्रेम के बदले प्रेम अवश्य मिलता है, लेकिन प्रेम दिखावे का नहीं, दिल का होना चाहिए।

प्रेम के इस गहरे तथ्य को कच्चे उम्र की दुलहिनें नहीं समझ पातीं। ससुराल आते ही कलह शुरू हो जाता है। आदर्श घरों की बात छोड़ दें तो प्रायः सब संयुक्त रहने वाले घरों में कलह के बादल छाए रहते हैं। कलह का बीज प्रायः दहेज़ की चीज़ों के बंटवारे से आरम्भ होता है। ननदें बहू की साड़ियों में से अच्छी से अच्छी साड़ियां चुनने की कोशिश करती हैं। बहु अपनी पसन्द से साड़ियां लाई है। ननदों की छीना-झपटी पर वह जल उठती है। उसके कलेजे में एक चुभन-सी होती है। प्रत्यक्ष तो वह कुछ नहीं बोलती, परन्तु दिल में ननदों को शत्रु मान लेती है। मेरी राय में बहू के दहेज़ में से कोई भी चीज़ पति-परिवार के किसी भी व्यक्ति को नहीं लेनी चाहिए। उसपर बहू का ही अधिकार रहना उचित है।

पहले-पहल यह कलह प्रायः स्त्रियों में ही सीमित रहता है। परिवार का पुरुष-समुदाय उसमें भाग नहीं लेता। बहू को भी ससुर से इतनी शिकायत नहीं होती जितनी सास से। सास भी अपने पुत्र को लाड़ला बनाए रखती है, लेकिन बहू को नागिन

कहती रहती है। जिठानी भी देवर से तो कुछ नहीं कहती, हंसकर बोलती रहती है, लेकिन देवरानी के लिए दिल ही दिल में विष घोलती रहती है। देवरानी भी जेठ से तो परदा करती है, उनका मान करती है, लेकिन जिठानी से दिन में कई बार दो-दो हाथ कर जाती है। ननद भी भाई पर तो जान देती है, लेकिन भावज के लिए यही कहती रहती है, "जाने कहां से यह गंवार पल्ले पड़ गई। इसका भी क्या कसूर! है ही छोटे घर की।" बहू भी अपने पति को तो कहती है, "ये देवतास्वरूप हैं," किन्तु उन्हीं-की बहन को कुलटा समझती है। वह यही कहती है, "सास ने अपनी लड़कियों को बिगाड़ दिया है। उन्हें अपने घर बसने ही नहीं देती। जब देखो अपने मायके आई रहती हैं। वसें भी कैसे? इनके पति इनसे तंग हैं। वे तो चाहते हैं कि ये बलाएं यहां से टली रहें।"

धीरे-धीरे यह ज़हर पुरुष-समुदाय की ओर भी फैलने लगता है। जिठानी-देवरानी की 'तू-तू, मैं-मैं' में से एक-दूसरे के पतियों पर भी छींटे पड़ने शुरू हो जाते हैं। जिठानी कहती है, "ज़मींदारी का सारा कार्य तो बड़े बाबू के हाथ है, छोटे बाबू करते ही क्या हैं! दिन-भर पड़े रहते हैं। तू उन्हें लिए बैठी रहती है।"

देवरानी कहती है, "मेरा खर्चा ही क्या है! अकेली जान हूं। जिसके चार-चार बच्चे हों, चिन्ता तो उसको हो।"

रात को पति के सिरहाने बैठकर वह अपनी जिठानी की चुगली करती है, "मालूम है जिठानी क्या कहती थी?—छोटे बाबू तो मुफ्त की खाते हैं।"

"सचमुच ऐसा कहती थी?"

"हां, पूछ लो उसीसे।"

"मैं भाई साहब से पूछूंगा।"

"जब पूछो तो यह भी पूछ लेना कि ज़मींदारी का जो रुपया आता है वह सबका सब कहां जाता है। मुझे तो तीज-त्योहार पर जो रुपये मिलते हैं वे भी जिठानी की तिजोरी में ही जमा रहते हैं।"

"बात तो ठीक है। आखिर ज़मींदारी का रुपया भाई साहब के अकेले का तो नहीं। मैं यह भी पूछूंगा।"

"इसमें पूछने की क्या बात है! भावज के तो नित्य नये ज़ेवर बनते हैं और हम कहें तो जवाब मिलता है—सोना ज़रा सस्ता हो जाए तो बनवा देंगे।"

इधर छोटी बहू अपने नये ब्याहे पति को यह सुनाती है और उधर बड़ी बहू अपने पति को कुछ और ही कहती है। रात होते ही परिवार के प्रत्येक सदस्य का कमरा अच्छा-खासा मन्त्रणागृह बन जाता है। जिठानी अपने पति को सुनाती है—

"देखो जी! मैं तुम्हें लाख बार कह चुकी हूं, यह दरियादिली अच्छी नहीं। छोटी बहू के लिए बाज़ार से कुछ न कुछ चला आता है। दिवाली पर इतनी महंगी साड़ी देने की क्या ज़रूरत थी? बहू तो ओछे घर की है। वह इस उदारता को क्या पहचानेगी! जो दिया सो दिया, अब कुछ देने की ज़रूरत नहीं। ज़मींदारी से आता ही क्या है! मेहनत तो तुम करते हो और पैसा उड़ाती है छोटे बाबू की लाड़ली बहू।"

कुछ दिन बाद लड़ाई रंग पकड़ती है। देवरानी अपने पति को रोते-रोते सुनाती है—

"तुम तो घर से बाहर रहते हो। मुझे ही सब बातें सुननी पड़ती हैं। आज जिठानीजी कह रही थीं कि ज़मींदारी की आम-

दनी से घर का खर्चा नहीं चलता, कहीं नौकरी कर लें। हमें नौकरी के लिए भेजकर ही ये लोग दम लेंगे।" नतीजा यह होता है कि भाई-भाई लड़ बैठते हैं। बरसों का लगा बाग उजड़ जाता है। मां की गोद का सहारा छूट जाता है।

भाइयों का यह कलह यहीं तक समाप्त नहीं हो जाता। माता-पिता से मिलने में भी आपत्ति होने लगती है। छोटी बहू अपने पति को समझाती है—

"तुम तो मां-बाप पर जान देते हो, मगर मां-बाप तुम्हें कब पूछते हैं! काके का जन्म हुआ था, तो भी बस दो दिन के लिए आए थे। तुम मानो न मानो, सारी जायदाद बड़े बाबू को ही दे जाएंगे। ज़ेवर और रुपया तो रहता ही उनके पास है।"

बहू को पति के किसी भी रिश्तेदार का घर आना अच्छा नहीं लगता। 'जगह कम है, नौकर नहीं हैं, मुन्ने की तबीयत ठीक नहीं,' किसी न किसी बहाने उन्हें दूर ही रखती है। हां, अपने मायके से कोई आ जाए तो सिर पर उठा लेती है। उसके लिए जगह भी काफी हो जाती है, मुन्ने की तबीयत भी ठीक हो जाती है और सब सुख-सुविधाओं का द्वार खुल जाता है।

पति का रिश्तेदार आए तो चीनी की तंगी से चाय नहीं बनती, असली घी न मिलने से रोटी का चुपड़ना बन्द है, चावल राशन में मिलते नहीं और मोटर की बैटरी ठण्डी पड़ जाती है।

तुम्हें ससुराल जाकर सबसे प्रेमपूर्वक बर्ताव रखना चाहिए। अब वही घर तुम्हारा घर होगा। उसे ही अपनाना होगा। जिस सचाई से तुम अपने मां-बाप और अपने सगे भाई-बहनों से प्रेम करती हो, उनका ऊंच-नीच का बर्ताव सहन करती हो, तीखे तेज़ वाक्य सहती हो—फिर भी उनको अपनाए रहती हो, उसी तरह

यदि अपने पति के परिवार वालों को अपनाओगी तो कभी ईर्ष्या-द्वेष की चिनगारियां नहीं उठेंगी।

पूरे विश्वास के साथ तुम्हें उनके बीच रहना होगा। अपने भाई-बहनों से भी कई बार तुम्हारी कहा-सुनी हो जाती है। कुछ देर के लिए विष-बुझे वाक्यबाणों की बौछार भी होती है। लेकिन दिलों की खाई इतनी गहरी नहीं फटती कि भरी न जा सके। इसके विपरीत सास-बहू या ननद-बहू की दो-चार कड़वी बातें भी ऐसी ताम्रपत्र पर लिखकर अमर कर दी जाती हैं कि पुश्त-दर-पुश्त उनका ज़हर चलता रहे।

स्त्री को प्रेम, क्षमा, उदारता और सहिष्णुता की साकार प्रतिमा कहा जाता है। बहिन बनकर वह भाई के लिए प्रेम का अक्षय सरोवर अपने हृदय में रखती है, पत्नी बनकर वह पति की प्रसन्नता पर जीवन की बड़ी से बड़ी निधि का हंसते-हंसते त्याग कर देती है और मां बनकर तो सारे जीवन को सन्तान के लिए मिटा देती है। ऐसी त्यागमयी, ममतामयी स्त्री किसीकी बहूरानी, ननद या सास बनकर क्यों नहीं प्रेम का प्रतिदान दे सकती—यह प्रश्न मेरी समझ में नहीं आता।

प्रतिदान की यह कमी बहू की ओर से ही नहीं होती। सास और ननदें भी बहू को अपनाने में बड़ी कृपणता से काम लेती हैं। यह कृपणता स्त्रियों के स्वभाव में प्रकृतिगत नहीं है; कुछ सामाजिक कारणों से उनके स्वभाव का अंग बन गई है। लेन-देन का मामला, या बंटवारे का प्रश्न आते ही हमारे घरों की लड़कियां बहुत सावधान हो जाती हैं। धन-लोभी पुरुष भी तंगदिल होते हैं। लेकिन उन्हें अपनी उपार्जन-शक्ति पर गर्व होता है। वह गर्व उनसे कुछ को अतिशय कृपण होने से बचा लेता है। स्त्रियों को

यह गर्व करने की सुविधा प्राप्त नहीं है। धन की चाह सभीको होती है। लोभ की मात्रा भी साधारणतया सभीके मन में समाई हुई है। उसी मात्रा के अनुपात से व्यक्ति भी कृपण या अकृपण होता है।

मेरा अभिप्राय यह है कि कुछ हद तक हमारी आर्थिक लालसा या स्त्रियों की अर्जन-परवशता ही इस कटुता का कारण है। इस अर्थप्रधान युग में ऐसी कटुताओं की वृद्धि ही होगी। इनमें न्यूनता की कल्पना नहीं हो सकती। तुम्हें केवल इतनी ही राय दे सकता हूं कि इन कटुताओं से बचने में ही जीवन की शांति है, सुख है।

एक बात तो निश्चय समझ लो। तुम्हारे पति की प्रसन्नता इसीमें होगी कि तुम उसके सम्पूर्ण परिवार का अंग बनकर रहो। तुम्हें स्वयं इसमें बड़ी सुविधा होगी। सास-ननद के प्यार में तुम अपने मां-बाप की बिछुड़न भूल जाओगी। हंसते-हंसते दिन बीतेंगे। दुख की घड़ियों में सहानुभूति मिलेगी और हंसने-खेलने को साथ मिलेगा। अलहदा घर बसाना बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है। पति के बाहर जाने पर सब सूना-सूना मालूम होगा। उपार्जन के लिए पति को विदेश भी जाना पड़ता है। इस लम्बे वियोग को काटने के लिए तुम्हें फिर अपने माता-पिता का आश्रय लेना पड़ेगा। कष्ट के अन्य अवसरों पर भी तुम अपने मां-बाप को लिखोगी। तुम्हारा पति तुम्हारे माता-पिता के उपकारों से दबना सहन नहीं करेगा। तब तुम पड़ोसियों या सहेलियों का आश्रय लोगी।

यहीं तक ही इस दुःखद अध्याय का अन्त नहीं हो जाएगा। वह समय भी आएगा जब तुम अपने पति के माता-पिता या भाई-बहन को घृणा की दृष्टि से देखने लगोगी। तुम्हारा सम्बन्ध उपेक्षा

का सम्बन्ध नहीं है। इन सम्बन्धों के रिक्त स्थान को प्रेम से नहीं भरा जाता तो घृणा के काले नाग यहां अपना फन फैलाने लगते हैं। यह घृणा देर तक दबी नहीं रह सकती। शब्दों में या व्यवहार में वह प्रकट होकर रहती है।

ज़रा सोचो, पति के आदरणीय माता-पिता को घृणा करके तुम पति के सम्पूर्ण प्रेम पर किस तरह अधिकार पा सकती हो? घृणा और प्रेम एकसाथ नहीं रह सकते। पति का मन अपने मां-बाप से कुछ देर के लिए विमुख होकर भी उनका प्यार पाने को सदा आतुर रहेगा। तुम्हारा अतुल प्रेम और महान् बलिदान भी उसे मां-बाप से विमुख नहीं कर सकेगा। उसके माता-पिता ने भी उसके लिए बलिदान किए थे। माता के स्नेह को अपनी तराज़ू पर तोलने की कोशिश मत करना। इस तुलना से पति को प्रसन्नता नहीं होगी।

मेरी सलाह तो यही है कि तुम अपनी आशंकाओं को दूर कर दो। ससुराल में जाकर यदि तुम्हें सास-ननद का व्यवहार अप्रीतिकर प्रतीत हो, तो भी पति की प्रसन्नता का ध्यान रखकर संयम से काम लो। प्रेम का मार्ग कांटों से भरा होता है। पति तुम्हारी कुर्बानी की कद्र अवश्य करेगा। तुम्हारा दुःख उससे छिपा नहीं रहेगा। सास-ननद का अन्याय उसे तुम्हारे पक्ष में कर देगा। तुम्हें अपने पति की प्रसन्नता की चाह है तो तुम्हारी सास को भी अपने पुत्र की प्रसन्नता का ध्यान है। वह भी उसके बुढ़ापे का सहारा है।

किसी भी अवस्था में तुम्हारी ओर से सास के लिए कोई अपमानजनक शब्द नहीं निकलना चाहिए। परिस्थितियों से बाधित होकर तुम्हें अलहदा घर बसाने को लाचार होना पड़े तो

भी उनका आशीर्वाद लेकर ही तुम अलग होना।

कई बार स्थान की दूरी हृदयों को पास ले आती है। पास रहते हुए भी दिल दूर रहते हैं और दूर रहते हुए भी दिल पास रहते हैं। एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने का यत्न करना चाहिए! तुम्हारे पति पर सास का भी अधिकार है। उसने उसे जन्म दिया है। उस अधिकार का मूल्य समझते हुए पति को उसकी माता से अलग करने की कोशिश न करना।

एक बात और—पति के सामने सास की कटु आलोचना न करना। कटु आलोचना विष-बुझा बाण है। आलोचक के दिल का ज़हर लेकर ही वह बाहर आता है। किसीकी आलोचना से प्रभावित होकर कोई अपनी राय नहीं बदलता।

मैंने तुम्हें जो कुछ कहा है वह किसी विशेषज्ञता के दावे पर नहीं कहा। तुम स्वयं यह सब जानती हो। कोई नई बात कहने का दावा नहीं भरता मैं। जो कुछ तुम्हारे अन्तर् में है उसीको प्रकाश में लाने का यत्न करता हूं।

विवाह के सम्बन्ध में तुम अपनी शंकाओं को मेरे सामने निःसंकोच रख सकती हो। विवाह अब केवल स्त्री-पुरुष का निजी सम्बन्ध नहीं रहा है। स्त्री-पुरुष की विकार-वासनाओं को प्राकृतिक रीति से ज्ञात करना भी विवाह का उद्देश्य नहीं रहा है। केवल सन्तानोत्पत्ति के अभिप्राय से विवाह का प्रयोजन मानना भी युक्तिसगत नहीं है। विवाह के लक्ष्य में इन सब प्रयोजनों का समावेश होता है, लेकिन इतने तक ही विवाह का क्षेत्र सीमित नहीं रह गया है।

विवाह का उद्देश्य तो अब सामाजिक जीवन के उत्कर्ष में इस तरह मिल गया है कि विवाह को हम मनुष्य के सारे सामाजिक

जीवन का हृदय भी कह दें तो अनुचित न होगा। विवाह ने स्त्री-पुरुष के प्रेम को कला का रूप देकर सामाजिक संस्कृति के निर्माण में और सामाजिक जीवन के पोषण में पूरा भाग लिया है।

इसीलिए उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक भूमंडल का कोई भी भाग एकनिष्ठ विवाह की प्रथा से रिक्त नहीं है। ईश्वर की ओर से मनुष्य को प्रेम का जो वरदान मिला था उसे मनुष्य की कलात्मक बुद्धि ने विवाह का रूप देकर अपना चमत्कार दिखलाया है। मनुष्य-बुद्धि के इस चमत्कार में भी ईश्वरीय प्रेरणा ही निवास करती है। ईश्वर को यह मंज़ूर न होता तो यह संस्था सदियों के लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकती थी।

हम सबका कर्तव्य है कि हम इस संस्था की नींव को मज़बूत करने की प्राणपण से चेष्टा करते रहें। इस सम्बन्ध को यथासंभव स्थायी बनाना ही हमारा लक्ष्य है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

कुछ प्रश्न

पत्र | ८

प्रिय कमला,

तुमने अपने पत्र में जिन बातों की चर्चा करके मेरी राय पूछी है, उनके सम्बन्ध में संक्षेप से लिखता हूं। जैसे-जैसे विवाह की तिथि निकट आती जाएगी, तुम्हारी शंकाएं बढ़ती जाएंगी। शंकाएं होना स्वाभाविक है। इसका अभिप्राय है कि तुमने विवाह के प्रश्न को गंभीरता से हल करने का निश्चय किया है और तुम वैवाहिक प्रश्नों का चिन्तन भी करती हो। कुछ पुराने लोग वैवाहिक जीवन की बातों पर चिन्तन करना भी पाप समझते थे। उनका युग बीत गया। अब विज्ञान का युग है। मनुष्य अपनी आंखों से देख-भालकर अपने रास्ते का चुनाव करना सीख गया है।

किसी पाश्चात्य विद्वान की वैवाहिक जीवन सम्बन्धी पुस्तक का हवाला देते हुए तुमने पूछा है कि—"यह बात कहां तक सच है कि वैवाहिक जीवन का सुख युवक-युवती की काम-सम्बन्धी आवश्यकताओं की तृप्ति पर आश्रित है।"

यह प्रश्न आजकल तुम्हारे ही नहीं, प्रत्येक पढ़े-लिखे युवक-युवती के मन में उठता है। इसका उत्तर ढूंढ़ने के लिए वे काम-विज्ञान की पुस्तकों का पारायण प्रारम्भ कर देते हैं। फिर भी उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। प्रत्येक पुस्तक काम-सम्बन्धी आवश्यकताओं की इतनी विविध और विस्तृत सूचियां पेश कर देती है और उनके ऐसे पेचीदे हल पेश कर देती है कि

जिज्ञासु का मन या तो नये-नये कौतूहलों से भर जाता है या वह थक-हारकर अपने प्रयत्न को बन्द कर देता है।

मैंने भी काम-विज्ञान के बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़े हैं और उन सबको पढ़ने के बाद मेरा विश्वास हो गया है कि मैंने व्यर्थ ही अपना समय नष्ट किया। एक बात की खुशी मुझे अवश्य हुई। वह यह कि मैंने अपनी कच्ची उम्र में इन पुस्तकों को नहीं पढ़ा था। उस उम्र में ये पुस्तकें मेरे मन में विचित्र कौतूहल पैदा कर सकती थीं। मैं इस तिलस्मी दुनिया के कौतुकों से दूर रहा—इसके लिए मैं अपने रूढ़िवादी अभिभावकों का कृतज्ञ हूं। मैं चाहता हूं कि कोई भी युवक अपनी प्रौढ़ावस्था से पूर्व इन पुस्तकों के जाल में न फंसे। तुम्हें भी मैं सलाह दूंगा कि इनके आकर्षक मुखपृष्ठों के नीचे केवल विष ही विष भरा है।

तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो केवल इतना ही है कि वैवाहिक जीवन का सुख युवक-युवती की काम-सम्बन्धी आवश्यकताओं पर बहुत कम निर्भर करता है। ये आवश्यकताएं प्रत्येक औसत दर्जे के स्वस्थ युवक व युवती में प्रायः सामान्य ही रहती हैं। प्रकृति ने इनमें विशेष विविधता पैदा नहीं की। ये आवश्यकताएं इतनी प्राकृत हैं कि मनुष्य को उनकी तृप्ति के लिए विशेष विचार द्वारा किसी शैली के आविष्कार की आवश्यकता ही नहीं है। वैवाहिक जीवन का सुख उनकी तृप्ति या सामंजस्य से सर्वथा भिन्न है। उसके लिए मानसिक सामंजस्य भी अपेक्षित है। बल्कि मेरा तो यह विश्वास है कि काम-सम्बन्धी सामंजस्य भी मानसिक सामंजस्य का अनुगामी ही है। मानसिक अतृप्ति ही काम-सम्बन्धी अतृप्ति को जन्म देती है। जहां सच्ची सहानुभूति होगी, परस्पर प्रेम होगा, वहां स्वयं काम-सम्बन्धी अनुकूलता पैदा हो

जाएगी। सच मानो, बाज़ारू कामशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य केवल पुरुषों के मानसिक विलास का साधन है। उसका परित्याग करना ही श्रेयकर है।

जो दूसरा प्रश्न तुमने पूछा है उसका उत्तर भी कठिन नहीं है। एक अन्य युवक ने तुमसे प्रेम किया था। माता-पिता के विरोध के कारण वह तुम्हारा जीवन-साथी नहीं बन सका। अब भी उसके हृदय में तुम्हारे लिए प्रेम है। तुमने पूछा है कि प्रेम-प्रसंग की चर्चा भावी पति से कर दी जाए या नहीं ?

उसके रहते जब तुमने दूसरे साथी को विवाह के लिए स्वीकार किया है तो यह निश्चय करके ही किया है कि वह प्रेम-प्रसंग अब समाप्त हो चुका है। तुम्हारा मन भी अब साफ है। उसकी याद तुम्हें सताती नहीं है। हर अवस्था में तुम्हें इस प्रसंग की चर्चा अपने भावी साथी से कर ही देनी चाहिए।

जिसे तुमने साथी स्वीकार किया है, उसके सामने तुम्हारा जीवन दर्पण के समान साफ होना उचित है। अनजाने में कोई बात छिपी रह जाए तो दूसरी बात है, लेकिन जान-बूझकर उससे कुछ भी छिपाना पाप है। 'पाप' शब्द का प्रयोग मैंने इस प्रयोजन से किया है कि इसे तुम मामूली भूल न समझना। भूल कभी जान-बूझकर नहीं की जाती। जानते-बूझते बुरा काम करना ही पाप करना है। जीवन-साथी के साथ तुम्हारा सम्बन्ध पवित्र सम्बन्ध है। उसमें असत्य को स्थान नहीं मिल सकता। असत्य कभी स्थायी नहीं होगा। एक जीवन तो क्या, एक दिन भी वह नहीं टिकेगा।

व्यवहार-नीति भी इसीका समर्थन करती है। बीती हुई बातें भी सदा के लिए नहीं बीत जातीं। जीवन के मार्ग में बिखरे

हुए साथी भी कभी-कभी मिलते ही रहते हैं। कभी उस 'निराश प्रेमी' ने तुम्हारे आगे फिर प्रेम-अभिनय शुरू कर दिया या प्रेम-पत्र भेज दिया तो, पति को उसकी चेष्टाओं का कौन-सा आधार बताओगी ? पति के मन में यदि यह सन्देह घर कर गया कि तुमने जान-बूझकर इस प्रसंग की बात छिपाई थी, तो वह तुम्हारे चरित्र पर संदेह करने लगेगा। सन्देह का यह बीज तुम्हारे विवाहित जीवन को बरबाद कर डालेगा।

इसलिए मैं तुमसे आग्रह करूंगा कि आज से यह प्रण कर लो कि तुम अपने जीवन-साथी से कुछ भी छिपाओगी नहीं।

तुम्हें शायद यह डर है कि तुम्हारे पुराने प्रेम-प्रसंग की बात सुनकर तुम्हारा भावी पति विवाह के निश्चय में परिवर्तन न कर दे। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ पुरुष बहुत अनुदार और इन मामलों में बहुत नासमझ होते हैं। कुछ तो बड़ी से बड़ी भूल को भी प्रेम के वश क्षमा कर देते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो सुनी-सुनाई बात को दिल में गांठ बांधकर रख लेते हैं। तुमने तो कोई भूल भी नहीं की। भूल हो गई होती तो भी मैं यही सलाह देता कि वह पति के कानों तक पहुंचा दी जाती।

जिसके प्रकट होने का परिणाम भविष्य में विवाह-विच्छेद होने का भय हो सकता है, उसे विवाह से पूर्व ही प्रकट कर देना बुद्धिमत्ता है। सचाई को देर तक छुपाया नहीं जा सकता। छिपाने का प्रयत्न करना भयानक अधर्म है। यह भय तुम्हें जीवन-भर चैन की सांस नहीं लेने देगा।

इस प्रसंग में तो तुम्हारी निर्बलता का कोई आभास भी नहीं है। मैं तो कहूंगा कि अपनी निर्बलताओं को भी उसके सामने रख दो। यदि तुमने कोई पाप किया है तो भी उसे स्वीकार कर

लो। उसे यह कहने का मौका न मिले कि उसके साथ धोखा हुआ है। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने लड़के-लड़की की सब निर्बलताएं भी सामने रख दें। अन्यथा विवाह के बाद छोटी-छोटी बातें 'भेद' बनकर खुलती हैं। परिणाम विवाहित जीवन का सर्वनाश होता है।

एक प्रश्न तुमने और पूछा है। तुम्हें नृत्य का शौक है। विवाह के बाद भी तुम इसका अभ्यास जारी रखना चाहती हो। तुम्हें डर है, कहीं तुम्हारा पति इसे जारी रखने की अनुमति न देगा तो क्या होगा। तुमने पूछा है कि क्या इस सम्बन्ध में तुम्हारे माता-पिता द्वारा भावी पति की स्वीकृति अभी से प्राप्त कर लेना उचित होगा ?

तुम्हारी रुचि यदि साहित्य या संगीत की ओर होती तो शायद तुम्हें यह प्रश्न तंग नहीं करता। नृत्य-कला का रूप उनसे कुछ भिन्न है। साहित्य में शब्दों द्वारा और संगीत में स्वरों द्वारा हृद्गत भावनाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। उन्हें सुन्दर सरल रीति से अभिव्यक्त करना ही कला है। नृत्य में शरीर के अंगों से वह अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति के माध्यम की यह भिन्नता दोनों में बहुत भेद कर देती है। तुम्हारे शरीर और मन को अपना समझने वाला इसमें आपत्ति कर सकता है। यदि वह उदार विचार का होगा तो आपत्ति नहीं करेगा। फिर भी उसकी इच्छा यही होगी कि तुम अपने शरीर के माध्यम द्वारा भावनाओं को सार्वजनिक रूप में अभिव्यक्त करने का काम न करो।

इसका कारण यह नहीं है कि वह तुम्हारे शरीर पर अपना स्वामित्व समझता है, एकाधिकार मानता है ; बल्कि यह भी हो सकता है कि साधारण जनता प्रायः मनोरंजन के लिए ही नृत्य

देखती है और वासनापूर्ण नृत्यों को ही पसन्द करती है। मनोरंजनप्रिय जनता भावना की अपेक्षा भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम शरीर से ही अधिक आकृष्ट हो जाती है और प्रदर्शन को सफलता देने के लिए नर्तक या नर्तकी भी देखने वालों की रुचि का ध्यान रखकर शारीरिक मुद्राओं और अंग-विशेष को ही महत्त्व देने लगते हैं। लोकप्रियता का लोलुप कलाकार भी इस प्रलोभन से बच नहीं पाता।

यह ठीक है कि इसमें दोष जनता का है। किन्तु कलाकार को भी इस दोष का दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। उसकी आत्मा दुखी हो जाती है। उसके साथी, उसके आत्मीय जनों को भी दुःख होता है। तुम्हारे पति को भी इससे वेदना होगी, इससे ग्लानि होगी। आत्मिक ग्लानि का भार सहते हुए भी जो कलाकार जनता को सन्तुष्ट करने में तत्पर रहते हैं, वे सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए ही ऐसा करते हैं। यह कला की साधना नहीं, झूठी वाहवाही पाने का यत्न है। इसलिए मेरी तो राय है कि इस नृत्य-कला की साधना का पत्नी बनने से पहले ही अन्त कर दो, जिसका प्रदर्शन रंगमंच पर या सार्वजनिक सभाओं में होता है। कला की रीति से इसका अभ्यास भले ही जारी रखो। घर में, सहेलियों में, भगवान की पूजा में तुम उसका उपयोग कर सकती हो।

मैंने यह सलाह तुम्हें इसलिए दी है कि मुझे आज तक लाखों में एक भी ऐसा उदारमना पति नहीं मिला जो अपनी पत्नी को रंगमंच पर नृत्य करते देखना पसन्द करता हो।

यह ठीक है कि अभी तक तुम्हें अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए नृत्य का सहारा लेना पड़ता है, किन्तु पत्नी

बनने के बाद, माता बनने के बाद किसी सहारे की ज़रूरत नहीं रहेगी। तुम्हारी भावनाएं सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे नारीत्व में और मातृत्व में अभिव्यक्त हो जाएंगी। जो अभाव तुम्हें कभी-कभी खटकता है, तुम्हारी नसों में चंचलता भर देता है, अंगों में सिहरन और दिल में छटपटाहट ला देता है, वह पत्नी और मां बनते ही अखण्ड तृप्ति में बदल जाएगा। ईश्वर की सबसे ऊंची कला तुम्हारी गोद में होगी। तुम्हारी सम्पूर्ण रचनात्मक प्रवृत्तियां उसमें केन्द्रित होकर अपने लक्ष्य को पा लेंगी। परितृप्ति और परिपूर्णता की चरम सीमा पर पहुंचकर तुम्हें नृत्य-कला का शायद स्मरण भी न रहे। इसलिए ऐसी शंकाओं से मन को विचलित मत करो।

नृत्य के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी के एक प्रसिद्ध लेखक ने बड़ी मनोरंजक बात लिखी है—

"They who love dancing too much seem to have more brains in their feet than in their heads."

—Terence.

—ज़िन्हें नृत्य से अतिशय अनुराग है, उनकी प्रतिभा सिर में नहीं, पैरों में रहती है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पूर्ण मिलन
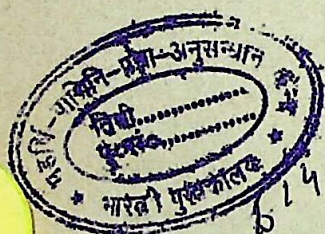
विवाह का आदर्श दो हृदयों की प्रेम-भावना तक ही सीमित नहीं। यह तो विश्वव्यापी प्रेम के मार्ग में एक पड़ाव-मात्र है……। विवाह में पत्नी को पति के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व विलीन करके निःस्वार्थ सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

—गांधीजी

प्रिय कमला,

जब यह पत्र तुम्हारे हाथों में पहुंचेगा, तब तुम्हारे हाथ मेहंदी से रंगे जा चुके होंगे। तुम्हारी कलाई में प्रेम की ज़ंजीरें बंध चुकी होंगी। किसीकी रत्न-जड़ित अंगूठियां तुम्हारी पतली-पतली अंगुलियों को लांघकर मुस्करा रही होंगी।

मैंने कहा था कि किसी दिन कोई व्यक्ति तुम्हारे पंखों को अपने प्रेम की डोर में बांध लेगा। तब तुम यह कहना भूल जाओगी कि मैं इस तारों-भरे आकाश में अकेली उड़ना चाहती हूं। बोलो, अब उन फड़फड़ाते पंखों को समेटकर किसीके प्यार के पिंजड़े में चैन से बैठना कितना अच्छा लगता है ?

सच कहना, ऐसा लगता है न कि जिस अमृत को पाने के लिए आत्मा व्याकुल होकर सब दिशाओं में दौड़ रही थी, वह मिल गया। शत-शत योजन दूर उड़ान करने वाली आंखें जिस अनोखी चीज़ को ढूंढ़ रही थीं, उसे अचानक ही पा लिया। एक-

दो दिनों में ही कितना अपनापन आ गया है इस अजनबी के साथ तुम्हारे दिल में ! मानो सदियों से एक-दूसरे को पहचानते थे। अपनत्व की भावना में इतनी ओतप्रोत हो गई हो तुम कि उसके दिल की धड़कन में भी तुम्हें अपने दिल की ही आवाज़ सुनाई देने लगी है।

उसकी आंखों में तुम्हारी दुनिया बस गई है और तुम्हारी मुस्कान में उसका संसार खिल उठा है। उसके होंठ हिलने से पहले ही तुम उसकी बात सुन लेती हो, और उसकी आंखों के इशारे से पहले ही तुम्हारे बाग की कलियां खिलखिलाकर नाचने लगती हैं। एक दिन में ही यह सब हो गया। एक क्षण ने ही तुम्हारी दुनिया बदल दी।

प्रकृति के सब महत्त्वपूर्ण काम इसी तरह क्षण-भर के जादू में आकस्मिक रूप से हुआ करते हैं। एक क्षण में ही सूर्य पर्वत के शिखर से निकलकर विश्व के अंधकार को प्रकाश में बदल देता है और एक ही क्षण में पृथ्वी के गर्भ से गरम सोतों का सागर फूटकर सारी पृथ्वी पर भूचाल ला देता है। क्षणिकता के इस चमत्कार ने ही दुनिया को रंगीन बनाया हुआ है। यदि एक ही क्षण ने तुम्हारे जीवन को भी नये रंग में रंग दिया तो आश्चर्य की बात नहीं है।

यह न समझना कि जो तुम्हें इतना अचानक मिला है वह अचानक ही छिन भी जाएगा। वह तो जीवन-भर तुम्हारे साथ रहने के लिए है। जो कुछ तुम्हें अनुभव हो रहा है वह तो केवल प्रारम्भिक अनुभव है। अभी तो इस यात्रा पर तुमने अपने जीवन-साथी के साथ प्रस्थान ही किया है। विवाह तुम्हारे प्रेम-जीवन का चरम बिन्दु भी है और यही प्रयाण-स्थल भी। यह यात्रा ऐसी

है जिसकी हर मंज़िल नया पड़ाव होती है और जो हर पड़ाव से नई यात्रा की तरह समारोहों से शुरू होती है।

इसकी नवीनता का स्रोत तुमसे बाहर किसी झील या पर्वत-शिखर पर नहीं है। वह तो तुम्हारे अपने अन्तस् में ही स्थित प्रेम की अनुभूति में है—जिस अनुभूति का रहस्य-भरा कम्पन प्रत्येक युवक-युवती के हृदय में भरा होता है और जो उन दोनों के परस्पर-आकर्षण की शक्ति के रूप में प्रकट होता रहता है। प्रेम-भावनाओं का यह सदा प्रवहमान निर्झर किसीमें समर्पित होने, किसीमें तल्लीन होने की चाह से तब तक बहता है जब तक वह किसीके अथाह प्रेम-सागर में अपने अस्तित्व को मिटा नहीं देता।

आत्मार्पण या पूर्ण मिलन की यह कामना, यह प्यास कई रूपों में अभिव्यक्त होती है। विवाह में उसके सब रूपों का एक-साथ समावेश है। इसलिए विवाहित प्रेम को सच्चा प्रेम मानते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष के मिलन को ही पूर्ण मिलन माना गया है। अन्य तरह के मिलन सर्वांगीण नहीं होते, आंशिक होते हैं। आंशिक मिलन में कामनाएं अधूरी और प्यासी रह जाती हैं। पूर्ण मिलन तभी होता है जब शरीर, बुद्धि और आत्मा तीनों का इतना प्रगाढ़ मिलन हो जाए कि सब कामनाएं पूर्णकाम और सब तरह की प्यास परितृप्ति में बदल जाए।

विवाह का आधार इसी पूर्ण मिलन को सफल बनाना है। संसार का दूसरा कोई सम्बन्ध ऐसा नहीं है जिससे मिलन की इतनी पूर्णता की जा सके। मित्र, भाई, पिता, आचार्य कोई भी व्यक्ति स्त्री व पुरुष की इस प्राकृतिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता। इसकी पूर्ति केवल पति-पत्नी-भाव से संयुक्त स्त्री-

पुरुष ही कर सकते हैं।

पत्नी बनने के बाद तुम्हें पत्नी बनने के इस लक्ष्य को सदा याद रखना चाहिए। बहुत-से लोग इस लक्ष्य को भूल जाते हैं। वे विवाह का लक्ष्य अपनी-अपनी आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से निश्चित कर लेते हैं। पुरुषों की धारणा हो जाती है कि वे घर, सन्तान और भोग की सुविधाओं के लिए विवाह कर रहे हैं। स्त्रियां समझती हैं कि वे आर्थिक सुरक्षा के लिए पति का आश्रय पा रही हैं। आर्थिक सुरक्षा का महत्त्व उनकी दृष्टि में इतना बढ़ जाता है कि दिल से नफरत करते हुए भी वे किसीसे केवल पैसे के लिए शादी कर लेती हैं। ऐसे विवाह कभी सफल नहीं होते।

जन्म-भर साथ रहकर जैसे-तैसे निभा लेना ही विवाह का प्रयोजन नहीं। निभाने को तो दो शत्रु भी साथ रहना निभा लेते हैं। दो जन्म के वैरी पड़ोसी भी जन्म-भर पास-पास रह लेते हैं। विवाह की सफलता इस 'निभा लेने' से ही पूरी नहीं होती। वहां तो शरीर और आत्मा का पूर्ण मिलन होना चाहिए। केवल निकटता होना पर्याप्त नहीं है। उस निकटता में आंतरिक सुख की अनुभूति होनी चाहिए।

शारीरिक मिलन में सुख की कामना भी विवाहित जीवन की पवित्र कामना है। याद रखो, जिसने तुम्हें पत्नी रूप से पाया है उसने यह प्रण किया है कि वह किसी भी अन्य स्त्री से शारीरिक सम्पर्क की कामना नहीं करेगा। तुमने भी ऐसा ही प्रण किया है। तुम दोनों को परस्पर शारीरिक प्रेम निभाना है। एक क्षण के लिए नहीं, एक बरस के लिए भी नहीं, जन्म-भर के लिए। इसलिए तुम्हारा शरीर उसकी निधि और उसका शरीर तुम्हारी निधि बन चुका है। तुम्हें उसे इतना स्वस्थ रखना है कि वह तुम्हारी निकटता

को सदैव सुखद अनुभव करे, तुम्हारा सहवास उसके लिए इतना आनन्दप्रद हो कि वह जन्म-भर के सहवास में वही नयापन अनुभव करता रहे जो प्रथम बार किया था। इस आनन्द में उदासीनता नहीं आनी चाहिए।

मेरा अनुभव है कि बहुत-सी स्त्रियां इस सहवास को केवल अनिवार्य पाप मानकर ही निभाती हैं। बचपन से उन्हें ऐसे घुटे हुए वातावरण में रखा जाता है कि वे प्रत्येक शारीरिक आनन्द को वासनाजन्य मानने लगती हैं। पति के प्राकृतिक प्रेम को भी वे निष्पाप नहीं मानतीं। यह उनकी संकीर्ण शिक्षा का दोष है। इससे उन्हें मुक्ति मिलनी चाहिए। मुझे आशा है, तुम्हें ऐसा मतिविभ्रम नहीं होगा। शारीरिक आनन्द भी यदि स्वस्थ रीति और सामाजिक संस्कृति की रक्षा करते हुए मिलता है तो वह उतना ही अभीष्ट है जितना आत्मिक आनन्द।

पति की तरह पत्नी का भी यह कर्तव्य है कि वह शारीरिक मिलन को सुखद-बनाने में सहयोग दे। कोई भी मिलन दोनों के सक्रिय, सोत्साह सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। मिलन दो निर्जीव वस्तुओं का या एक सजीव, दूसरी निर्जीव वस्तु का नहीं है। दो सजीव शरीर व आत्माओं के मिलन में मुक्तभाव से आदान-प्रदान होना उचित है। यह सम्भव नहीं है कि एक पक्ष केवल देता रहे, सक्रिय रहे और दूसरा निश्चल या निर्जीव पत्थर की तरह केवल ग्रहण करता रहे। पति-पत्नी का सम्बन्ध रानी और भिखारी का नहीं। दोनों को समान रूप से सचेष्ट रहना चाहिए और मिलन के आनन्द में उत्साह दिखाना चाहिए।

आदान-प्रदान की इस सहकारिता के लिए शरीर की स्वस्थता आवश्यक धर्म है। स्वस्थ शरीरों का मिलन ही आनन्द-

प्रद हो सकता है। मिलन के लिए आकर्षण चाहिए। स्वस्थ, निर्मल और सुन्दर व्यक्ति ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। स्वास्थ्य के साधारण नियम तुम्हें भी मालूम हैं। स्वस्थ मनुष्य का अभिप्राय कसरती पहलवान से नहीं है। नीरोग और प्रजनन में समर्थ होना पर्याप्त है। आखिर स्त्री-पुरुष के मिलन के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोजन—सन्तानोत्पत्ति—को ही मैं विवाह का एक-मात्र लक्ष्य नहीं मानता, किन्तु विवाह की पूर्णता के लिए संतान का प्रजनन अनिवार्य है। स्वस्थ सन्तान के लिए माता-पिता का स्वस्थ होना ज़रूरी है।

सौंदर्य भी स्वास्थ्य के साथ ही होता है। मनुष्य का शरीर ईश्वर की सुन्दरतम रचनाओं में से एक है। प्राकृत अवस्था में उसे सुन्दर होना ही चाहिए। जवानी में कोई भी स्वस्थ शरीर असुन्दर नहीं होता। रोग या अस्वच्छता ही उसे कुरूप बना सकते हैं। सुन्दरता से पहले निर्मलता की आवश्यकता है। सुन्दर से सुन्दर शरीर अस्वच्छ होगा तो आकर्षणहीन हो जाएगा। विवाह में शारीरिक निर्मलता और भी आवश्यक है, क्योंकि शारीरिक मिलन का सुखकर होना इसीपर निर्भर करता है।

सुकेशी होना सौभाग्य-चिह्न है, किन्तु केशों की यह लम्बाई या चिकनाई अखरने लगेगी यदि उनकी जड़ों में मलिनता ने घर कर लिया होगा। सुवासित इत्रों की सहायता से शरीर की मलिनता को धोया नहीं जा सकता। स्वच्छ पानी से धोया हुआ निर्मल शरीर कभी अप्रीतिकर गन्ध का कारण नहीं बन सकता और बिना धोया शरीर सैकड़ों इत्रों से भी सुवासित नहीं किया

जा सकता।

प्रत्येक दम्पती को चाहिए कि वह विवाह से पूर्व स्वस्थ और स्वच्छ रहने के नियमों की जानकारी हासिल कर ले। उन नियमों के प्रति कभी उदासीन न हो, क्योंकि शरीर को प्रतिदिन स्वच्छ रखने की आवश्यकता है। अपने शरीर को मलिन रखकर कोई पत्नी अपने पति की निकटता प्राप्त नहीं कर सकती। जो निकटता दो आत्माओं में अमिट आत्मीयता को जन्म दे देती है उससे वह वंचित रह जाएगी।

शारीरिक मिलन की तृप्ति तभी पूर्ण हो सकती है यदि मानसिक मिलन भी साथ ही हो। मानसिक निकटता शारीरिक निकटता से भी अधिक आवश्यक है। शरीर का आकर्षण हमें कभी प्रेम की गहराई तक नहीं ले जाता। विवाहित स्त्री-पुरुष में मानसिक सामंजस्य होगा तभी दो आत्माओं का सच्चा मिलन होगा; तभी विवाह चिरस्थायी होगा और जीवन-भर निभ सकेगा।

मानसिक सामंजस्य से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि तुम स्वतन्त्र विचार करना छोड़कर पति के पद-चिह्नों का अंधानुकरण शुरू कर दो। सामंजस्य दो स्वतन्त्र विचारों का ही होता है। स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर कोई भी विचार दूसरे के विचारों को तरंगित नहीं कर सकता। विचारों का मिलन भी आदान-प्रदान की गति चाहता है। विचार-विनिमय भी तभी हो सकता है यदि दोनों का विचार-कोष भरपूर हो और दोनों को लेन-देन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

जिस तरह दो सर्वथा भिन्न शरीरों के प्रेम-भावना से बद्ध मिलन से पूर्ण मिलन संभव है उसी तरह दो सर्वथा भिन्न विचारों

का पूर्ण मिलन भी प्रेम-भावना से बंधकर संभव हो सकता है। मानसिक विषमताओं के जुदा-जुदा पुष्प जब प्रेम-भावना के एक ही सूत्र में पिरोए जाते हैं तो जो पुष्पमाला बनती है वह स्त्री-पुरुष के मिलन की अचूक निशानी होती है।

किन्तु, मानसिक विषमताओं को भुलाकर, मतभेदों को आंखों से ओझल करके, हृदय की गहरी सहानुभूति से अपने साथी को अपनाए रखना आसान काम नहीं है। यह भी एक कठिन कला है। बड़ी साधना, सच्चे दिल और उदार विवेक से ही इस कठिन काम में सफलता मिलेगी।

मुझे आशा है तुम यह कठिन काम कर सकोगी। तुमने दुनिया का ऊंच-नीच देखा है। अपनी माता का उदाहरण तुम्हारे सामने है। कितनी सहिष्णुता है उनमें! तुम्हारे पिताजी जब मनमानी करने पर उतर आते हैं तब भी वे कुछ नहीं बोलतीं। किन्तु उनका मौन ही क्या पिताजी को सच्चे रास्ते पर नहीं ले आता! अपने हठ पर थोड़ी देर रहने के बाद वे स्वयं अपना दोष मान लेते हैं। अपने मतभेद को केवल मौन में दिखलाना दूसरे पर अच्छा असर करता है।

वाणी के संयम में तुम बड़ी प्रवीण हो। तुम दूसरे की आलोचना में शब्दों का अपव्यय नहीं करतीं। अपनी बात वहीं कहती हो जहां उसका मूल्य हो। बिना पूछे सलाह नहीं देतीं।

ऊंची शिक्षा ने तुम्हारे स्वभाव में कूट-कूटकर विनय भर दी है। विनय और विचारों की उदारता—ये गुण तुम्हें मानसिक अनुकूलता बनाने में बहुत सहायक होंगे।

एक बात का और खयाल रखना। पति के निजी मामलों में अनावश्यक जिज्ञासा मत दिखलाना। तुम उसकी अर्धांगिनी

हो, उसके आधे की अधिकारिणी हो; किन्तु इस अधिकार का प्रदर्शन न करना। तुम्हारे अधिकार-प्रदर्शन के बिना भी तुम्हारा साम्राज्य अविच्छिन्न बना रहेगा; और यदि तुम पति के सब कामों में आधे भाग पर दखल देने लगोगी, तो तुम्हारी आतुरता तुम्हें अशांत बना देगी।

मानसिक अनुकूलता का सबसे बड़ा शत्रु अविश्वास है। विवाह की नाव परस्पर विश्वास के सहारे ही चलती है। जहां विश्वास नहीं होगा, वहां प्रेम नहीं रहेगा। विश्वास अप्रेम को भी प्रेम में बदल देता है।

मानसिक समता का एक और शत्रु है, जिससे दूर रहना। अपने जीवन-साथी से सब गुणों की खान होने की दुराशा न करना। उसके प्रेम को ही संसार की सबसे बड़ी निधि समझना। उसके गुण-अवगुणों को न तोलना।

पत्र लम्बा हो गया। प्रेम और विवाह का अर्थ तुम अब स्वयं समझने लगी होगी। जीवन की यात्रा में सच्चा साथी मिलना ही विवाह की चरम सफलता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि जो मधुरता आजकल तुम दो आत्माओं के मिलन में भरी है वह कभी रिक्त न हो। जीवन की विषम यात्रा को सरल बनाने के लिए यह मधुरता ईश्वर की देन है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पत्र | १०

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कांता प्रियालापिनी,
इच्छापूर्त्तिधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं स्विष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

जिस आश्रम में, आनन्द-भरा घर, चतुर सन्तान, प्रियवादिनी स्त्री, अभीष्ट धन, पत्नी में रति तथा आज्ञापालक सेवक हों, और जहां प्रतिदिन अतिथि-सेवा, ईश्वरपूजा, अपनी इच्छा से खान-पान तथा सत्संग मिले, वह गृहस्थाश्रम धन्य है।

प्रिय कमला,

यह सच है कि प्रेम वैवाहिक जीवन को मधुर बनाने के लिए आवश्यक है, प्रेम ही विवाह का मुख्य आधार है; किन्तु विवाह का प्रयोजन केवल परस्पर प्रेम की प्यास बुझाना नहीं है। विवाह को व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ही पूर्ति का साधन नहीं माना जा सकता। विवाह की सामाजिक महत्ता है। तभी समाज ने विवाह को स्वीकृति ही नहीं दी, सामाजिक महत्त्व भी दिया है। विवाह पर समाज की मुंहर लगाई गई है। उसकी सुरक्षा के लिए और स्थिरता के लिए विधि-विधान बनाए गए हैं।

विवाह को यह महत्त्व इसलिए मिला है कि विवाह ही स्त्री-पुरुष को मिलाकर घर का निर्माण करता है। घर पत्थर की दीवारों का नाम नहीं है। स्त्री और पुरुष के सम्मिलित निवास-स्थान को

ही घर कहते हैं। केवल सम्मिलित निवास भी घर का निर्माण नहीं करता। वह कुछ ज़िम्मेदारियों को आधार मानकर किया जाता है। गृह-जीवन के कुछ दायित्वों को निभाने का प्रण लेकर दोनों इस निवास को प्रारम्भ करते हैं, और इस दायित्व को निभाने का व्रत ही दोनों को सम्मिलित रहने की आज्ञा देता है। दायित्वहीन स्त्री-पुरुष के सम्मिलित निवास की आज्ञा समाज के नियम नहीं देते।

परस्पर प्रेम के सहारे ही गृह-जीवन की नाव नहीं चल सकती। अपने हिस्से के कामों को निभाए बिना घर नहीं बन सकता। घर बनाने के साथ ही पति यह दायित्व लेता है कि वह अपनी पूरी योग्यता और शक्ति से घर के खर्चों को पूरा करने योग्य धन का अर्जन करेगा और पत्नी यह ज़िम्मेदारी उठाती है कि वह पूरी शक्ति और योग्यता से घर का प्रबन्ध करेगी। यदि दोनों अपने दायित्व को दिल से निभाते हैं तो घर की शान्ति कभी भंग नहीं होगी।

केवल भावुकता से भी यह दायित्व पूरा नहीं होता। इस साझेदारी को अच्छी तरह चलाने के लिए दोनों को अपने कामों में निपुण होना चाहिए। पुरुष का काम है धन कमाना, और पत्नी का काम है उस धन का समुचित रीति से विभाजन, घर की देखभाल, घर की व्यवस्था।

मेरा विश्वास है कि जो लड़की इस बात को ठीक तरह ध्यान में नहीं रखती वह धोखे में विवाह करती है। उसे शीघ्र ही निराश होना पड़ेगा। केवल प्रेम-प्रदर्शन करके या सजी-धजी रहकर अथवा पति की भोगतृष्णा बुझाकर ही तुम पति की जीवन-संगिनी नहीं रह सकतीं। तुम अब गृहलक्ष्मी हो, गृह-राज्य की

रानी हो। पति के जीवन में स्त्री-समागम ही सबसे आकर्षक अभीष्ट नहीं है। उसे घर का आराम भी चाहिए, समय पर स्वास्थ्यकर भोजन भी चाहिए और सामाजिक संस्कृति के अनुकूल घर की प्रतिष्ठा भी चाहिए। विवाहित जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वह इन बातों को भूला-सा रहता है, लेकिन बाद में इनका ही महत्त्व बढ़ता जाता है।

मेरी राय में अब उसी लड़की को शादी करनी चाहिए जिसमें परिवार की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वस्थता का ध्यान रखने की बुद्धि विकसित हो चुकी हो, घर संभालने और घर के सब काम करने की निपुणता आ चुकी हो। विवाह से पूर्व लड़कियों को ये काम अपनी माता द्वारा सिखाए जाते हैं। पश्चिम के देशों में तो इस कार्य की शिक्षा के लिए विशेष आयोजना भी हो चुकी है। पत्नियों को सफल गृह-पत्नी बनने की शिक्षा के लिए शिक्षणालय खुल गए हैं। लड़कियों को स्वादिष्ट भोजन बनाने, स्वस्थ माता बनने की शिक्षा तक ही इन शिक्षणालयों का क्षेत्र सीमित नहीं है; पत्नियों के साधारण ज्ञान का स्तर ऊंचा करने का प्रयत्न भी इन शिक्षणालयों द्वारा किया जाता है।

इन उपयोगी शिक्षाओं में रुचि न लेकर जो स्त्रियां केवल अपने सौन्दर्य को बढ़ाने और वेशभूषा को आकर्षक बनाने की कला का ही अभ्यास करती हैं वे कभी सुखी गृहिणी नहीं बन सकतीं। जो स्त्री केवल अपने बाह्य सौंदर्य के आधार पर पुरुष से जीवन-भर का सौदा करती है वह कम देकर पुरुष से अधिक की उम्मीद रखती है। दान-प्रतिदान प्रायः समान होते हैं। जो जितने की आशा रखता है उतना ही दान करना चाहिए उसे। थोड़ा देकर बहुत की आशा रखना मूर्खता है। अपने रूप के बदले

में वे पुरुष से आजीवन साथ की मांग नहीं कर सकतीं। ऐसी पत्नी से ऊबकर आदमी सचमुच गृहस्थी से विमुख हो जाता है। ऐसा घर सच्चा घर नहीं हो सकता।

घर की व्यवस्था भी कला है। इस कला की साधना नियमित रूप से होनी चाहिए। हर पत्नी को अपनी निश्चित दिनचर्या बना लेनी चाहिए। पत्नी को पति के शय्या-त्याग से पहले ही उठना उचित है। पत्नी के जागरण के साथ सारे घर में फिर से जीवन का प्रकाश फैल जाता है। वह सोई रहेगी तो सारा घर सोया रहेगा। कुछ स्त्रियां मसहरी के अन्दर लेटी-लेटी नौकर को आदेश देती रहती हैं। नौकर जब तक सुबह की चाय तैयार करके मेज़ पर न रख दे, तब तक श्रीमती जी गरम गदेलों से नीचे पैर नहीं रखतीं।

मेज़ पर आकर जब चाय पीने लगते हैं तो आप शोर मचाना शुरू करती हैं—चाय में पत्तियां बहुत झोंक दीं तूने, खांड में सुसरियां चल रही हैं, प्यालियों के अन्दर मैल लगा है। केटली को बिना धोए ही उसमें उबलता पानी उंड़ेल दिया गया था—यह रहस्य तब खुलता है जब कई लाशें केटली के ऊपर तैरती नज़र आती हैं। मिलकर चाय पीने का सब आनन्द इसी चीख-पुकार में मिट जाता है।

दुबारा चाय बनाने का आर्डर होता है। इतने में मेज़ पर अखबार आ जाता है। पतिदेव अखबार में आंख गड़ा देते हैं। श्रीमतीजी भी अखबार की छीना-झपटी में एक पन्ना हथिया लेती हैं। उन्हें सारे अखबार में इतनी ही दिलचस्पी है कि सोने का भाव चढ़ा या घटा। कई महीने से गले का हार बनाने की सोच रही थी, लेकिन सोने का भाव चढ़ता ही जाता है। इसी

चिन्ता में चाय की बात गुम हो जाती है।

चाय के बाद श्रीमतीजी या तो शैम्पू की बोतल लेकर गुसलखाने में दाखिल हो गईं या बिजली का आयरन लेकर अपने जम्परों पर इस्तरी करने लगीं। घर में एक ही पाइण्ट है। उसपर रेडियो बजा लो या इस्तरी कर लो। पतिदेव रेडियो पर नई खबरें सुनने को उत्सुक हैं, परन्तु साड़ी-जम्पर पर इस्तरी करना अधिक उपयोगी काम है।

उधर रसोई में नौकर ने अंगीठी में कोयलों की आधी बोरी झोंक दी और शाक-भाजी को बिना धोए छौंक दिया। कीड़े-मकोड़े भी तले गए, उनसे गरम मसालों का काम निकल गया। फिर भी पत्नी को अभिमान है कि वह शाकाहारी है। शाक भी ऐसा बनता है कि जिसके धोने-काटने में तकलीफ न हो। हरी सब्ज़ियों या हरी फलियों को छीलने में समय लगता है। उन्हें कई बार धोना भी पड़ता है। इसलिए बैंगन, रतालू, सीताफल या आलू की ही सब्ज़ी प्रायः प्रतिदिन बनाई जाती है। दाल भी नौकर ने कनस्तर के अन्दर हाथ डालकर मुट्ठी-भर निकाली और उबलते पानी में उंड़ेल दी। कितने झींगुर और कीड़े-मकोड़े उस मुट्ठी-भर दाल के साथ ही पक गए इसका ज्ञान किसीको नहीं होता, क्योंकि दाल में कड़छी चलाते हुए पतीले का ढकना खोलने की किसीको फुरसत नहीं होती। उसे तो जल्दी में काम निपटाकर बाहर बीड़ी पीने जाना है। बीड़ी के जूठे हाथ से वह फिर शाक-भाजी को हिलाने लगता है। कभी कोई मीठी चीज़ पकती हो तो चख लेता है।

जिस घर में भोजन बनाने का काम नौकर के ज़िम्मे होगा वहां स्वच्छता का ध्यान नहीं रखा जा सकता। वहां स्वास्थ्य के लिए उपयोगी भोजन बनाने की चिन्ता भी नहीं हो सकती। पत्नी

को याद रखना चाहिए कि पति का स्वास्थ्य स्वस्थ भोजन करने से ही अच्छा होगा। दवाइयों में सैकड़ों रुपये बहाने के बाद भी वह काम नहीं हो सकता जो पौष्टिक भोजन करने से हो सकता है। हमारे घरों में एक प्रतिशत पत्नियों को भी इसका ज्ञान नहीं है कि स्वास्थ्यप्रद भोजन कौन-से हैं, उनको किस विधि से तैयार करना चाहिए, उनके पौष्टिक तत्त्वों की रक्षा करने के लिए कौन-से उपायों का अवलम्बन करना उचित है। सदियों से चली परम्परा को किसी तरह कायम रखकर ही उन्हें पूर्ण सन्तोष हो जाता है। विज्ञान-युग ने भोजनतत्त्वों में पौष्टिकता की वृद्धि के लिए जो उपाय बतलाए हैं उन्हें जानने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। पत्नी को इसका पूरा ज्ञान होना चाहिए। आजकल इस ज्ञान की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। पहले ज़माने में घी-दूध की बहार थी। सस्ते में बढ़िया घी और दूध मिल जाते थे। उनमें पौष्टिक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में होते थे। अब शुद्ध दूध-घी का मिलना कठिन है। साधारण स्थिति के लोग पर्याप्त मात्रा में उन्हें खरीद भी नहीं सकते। फलों की महंगाई भी फलाहार का अवसर नहीं देती। शाक-भाजी के चुनाव पर ही हमारे भोजन की पौष्टिकता निर्भर करती है। चुनाव से भी अधिक उन्हें पकाने की शैली पर ध्यान देना चाहिए। प्रचलित पाकविधि बहुत दोषपूर्ण है। पोषक तत्त्व बिल्कुल नष्ट करके ही शाक बनाते हैं। इसमें परिवर्तन करना चाहिए।

मुझे कई घरों के पतियों ने कहा है कि वे इस ओर पत्नियों का ध्यान दिलाने की कोशिश पिछले पन्द्रह वर्षों से कर रहे हैं, किन्तु पत्नियां अपनी रीति-नीति में कोई परिवर्तन करने को तैयार नहीं होतीं। बचपन में उन्होंने जो कुछ अपनी मां से सीखा

होता है वही उनके लिए अन्तिम होता है। कोई भी नई बात वे सीखना नहीं चाहतीं। वैज्ञानिक खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि सन्तुलित भोजन बहुत महंगा नहीं होता। भारत में दस आना प्रतिदिन में भी ऐसे सन्तुलित भोजन की प्राप्ति हो सकती है। पत्नियों को नये वैज्ञानिक प्रयोगों के प्रति दिलचस्पी बढ़ानी चाहिए। शिक्षा का यह लाभ भी वे न उठाएंगी तो कौन-सा लाभ उठाएंगी ?

घर की स्वच्छता और सजावट में भी पत्नी को अपनी कलात्मक रुचि से काम लेना चाहिए। दिन में एक बार स्वच्छता करना आवश्यक है। किन्तु ज़रूरी नहीं कि वह समय वही हो जिस समय पतिदेव रेडियो सुनने बैठते हैं या कोई स्वाध्याय करते हैं। वह समय या तो सुबह के नाश्ते से पहले या दोपहर के नाश्ते के बाद का होना चाहिए। स्वच्छता के पीछे दीवाना होना भी ठीक नहीं। बच्चों वाले घर में चीज़ें बिखरती हैं। उनपर कड़ा अंकुश रखने से उनकी आज़ादी छिन जाएगी। वे समझने लगेंगे कि घर से तो स्कूल ही अच्छा, जहां खुलकर बैठने की तो इजाज़त है। स्वच्छता के नाम पर जहां स्वतन्त्र रूप से उठने-बैठने पर भी कड़ी पाबन्दियां लगने लगें, वहां घर की स्वच्छता खटकने लगती है।

घर की सजावट करते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि घर का शृंगार इतना महत्त्वपूर्ण न हो जाए कि घर में आज़ादी से उठने-बैठने की मनाही होने लगे। घर तब तक ही घर है जब तक परिवार के सदस्य उसमें आज़ादी से रह सकें। शिष्टता का ध्यान तो रहे मगर स्वतन्त्र रहन-सहन का भय न हो, रोक-टोक न हो।

सजावट सादगी के साथ ही होनी चाहिए। सामान में एक-

रसता प्रतीत होना ठीक है। यह न हो कि दीवारों पर धब्बे लगे हों और परदे रेशमी लटक रहे हों। फर्नीचर तो टूटा-फूटा हो, सोफे का अस्थिपिंजर बाहर निकल आया हो और गलीचे की शान उसपर हंस रही हो। ऐसी विषमता घर की सजावट को भद्दा कर देती है। कई घरों में देखा है, चारों ओर कंगाली का राज्य होगा, मगर रेडियो इतना आलीशान होगा कि देखने वाला दंग रह जाए।

सजावट के सामान का विविध रंगों का होना भी अखरता है। पूरी रूपरेखा तैयार करके ही सामान खरीदना चाहिए। कुछ घरों में मेज़ तो मुगलों के ज़माने की याद दिलाती है, बाकी सब आधुनिक होता है। जब जो चीज़ पसन्द आई, घर में धकेल दी—यह नीति घर की सजावट को बहुत खर्चीला किन्तु ऊटपटांग-सा बना देती है।

सजावट का सबसे बड़ा उसूल यह है कि सजावट की चीज़ें भले ही थोड़ी हों, पर करीने से रखी हों। सब चीज़ों की जगह बनी हो, जहां जी चाहे न रख दी जाएं। बच्चों को इस बात का अभ्यास कराया जाए कि वे जो चीज़ जहां से उठाएं वहीं रख दें। इधर-उधर किताबें, कपड़े, जूते बिखेरकर न रखें। पत्नी या माता को यह नहीं करना चाहिए, कि वह स्वयं चीज़ें समेटती फिरे। उसे तो बच्चों को सिखाना चाहिए, उनमें आत्मनिर्भरता भरनी चाहिए।

मैंने कई घरों में देखा है कि बड़े होने तक भी बच्चों को अपने कपड़े संभालने की चिन्ता नहीं होती। माता ही कपड़ों की तह लगाकर रख दे तो रख दे, माता ही उनकी मेज़ को साफ करे तो कर दे, नहीं तो वे स्वयं कभी अपनी चीज़ों को करीने से

रखने की चिन्ता नहीं करेंगे। ऐसे लाड़ों में पले, बिगड़े नवाब कभी अच्छे पति नहीं बनेंगे। उनकी पत्नियों को ही उनके कपड़ों की चिन्ता करनी पड़ेगी।

यह बात तो किसी हद तक निभ भी जाएगी, लेकिन जहां लड़कियों में यह लापरवाही भर जाएगी वहां क्या होगा? पतियों को इतना अवकाश नहीं होता कि वे अपने और अपनी पत्नी के कपड़ों को संभालते रहें। जिन पतियों को यह दोहरी ज़िम्मेदारी निभानी पड़ती है, वे अपने को सुखी अनुभव नहीं करते, पत्नी का वहां उचित सम्मान नहीं होता।

अच्छे भोजन बनाने और सुन्दर सजावट करने तक ही पत्नी की घरेलू ज़िम्मेदारियों का अन्त नहीं हो जाता। यह तो केवल घर के शारीरिक स्वास्थ्य की देख-रेख है। घर की पूर्ण स्वस्थता के लिए घर के मानसिक स्वास्थ्य को भी बनाए रखना चाहिए। शरीर की स्वस्थता मन की स्वस्थता के लिए अनिवार्य है; किन्तु शरीर स्वस्थ होते हुए भी मन अस्वस्थ हो सकता है। धन-धान्य से भरे घरों में भी अशांति की आंधी चल सकती है। मैंने बहुत-से वैभवपूर्ण घरों में श्मशान के शोले दहकते देखे हैं और बहुत-सी रत्नाभूषण-सज्जित गृह-रमणियों का सुहाग उजड़ते देखा है। इसके विपरीत यह भी देखा है कि चार तिनकों से बने घरों का दीपक जगमगा रहा है और उनकी गरीब पत्नियों के होंठों की मुस्कान कभी बुझी नहीं है।

घर की मानसिक दशा गृह-पत्नी के मन की दशा का अनुसरण करती है। तुम्हारे दिल में सन्तोष होगा तो घर की दीवारें भी हसती रहेंगी। तुम्हारे दिल में आंधी होगी तो घर का चिराग वैसे ही जलेगा। बाहर के आंधी-तूफान से तो तुम उसकी रक्षा

कर सकती हो, लेकिन अपने अन्तर् की अशांति के झोंकों से उसे कैसे बचाओगी ?

मन का संतोष या होंठों की मुस्कान तुम्हारी आत्मा की सम्पत्ति है। किसी कीमत में भी वह बाहर से उपलब्ध नहीं हो सकती। संभव है किशोरावस्था में तुमने सपने लिए हों ; अपने भावी जीवन का कल्पित चित्र बनाया हो। सपने किसके पूरे होते हैं ! जीवन के अनुभव ने तुम्हें यदि अब तक यही नहीं सिखाया तो तुमने अभी जीवन से कुछ भी नहीं सीखा। ईश्वर ने तुम्हारे भाग्य में जो अनमोल हीरा लिखा था वह तुम्हें मिल गया। उस अपने हीरे को पत्थर और दूसरों के चमकते पत्थरों को भी हीरा समझकर मन ही मन दुखी होगी तो हाथ का हीरा भी पत्थर हो जाएगा !

ईश्वर ने तुम्हें स्वस्थ और सुन्दर शरीर दिया है, जवानी दी है। तुम्हारे हृदय के तारों में उसने संगीत भरा है। प्रेम के स्पर्श से उसे प्रस्फुटित करने को प्रेमी तुम्हारे द्वार पर भिखारी बनकर खड़ा है। उसकी आराधना स्वीकार करो। अपने मन के मौन तारों से जीवन का गीत निकलने दो। वह सूर्य की पहली किरण बनकर तुम्हारी अधखिली कलियों को खिलाने आया है उसकी आत्मा के स्पर्श से अपने जीवन-पुष्प का पूर्ण विकास होने दो।

प्रेम ही घर के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है। पति से प्रेम लेने तक ही तुम्हारा प्रेम-व्यवहार समाप्त नहीं हो जाता। प्रेम में देना अधिक और लेना कम होता है। पति की कठिनाइयों को समझना, उसे आसान बनाने के लिए अपनी सुविधाओं को तुच्छ समझना ही तुम्हारे प्रेम की निशानी है।

जिस घर में एक-दूसरे की चिन्ता न करके पति-पत्नी अपनी ही चिन्ताओं में व्यस्त हो जाते हैं, वहीं कलह होती है, वहीं घर की शांति भंग होने लगती है।

तुम्हें गृहस्थी के कामों की चिन्ता है। जहां तक हो सके पति को घरेलू कामों की चिंता से मुक्त रखो। बाज़ार से आटे-दाल की खरीद या बच्चों को डाक्टर के पास ले जाने का काम तुम स्वयं कर सकती हो। गृह-कार्यों का यह अभिप्राय नहीं है कि तुम घर की चहारदिवारी के भीतर ही के कामों को करो। फिर भी, यदि तुम्हें इस काम में पति की सहायता लेनी है तो उसकी सुविधाओं को देखकर काम करने को कहो। बहुधा होता यह है कि शाम को पति के आफिस से लौटते ही मूर्ख पत्नियां पति के सामने घर की समस्याएं लेकर बैठ जाती हैं। नाश्ते की प्लेट सामने रखी है और पत्नीजी उबल रही हैं—

"आप तो दफ्तर जाकर सोच लेते हैं कि गृहस्थी के सब काम निबट गए। यहां आटे का काल है, दालें खत्म हो गई हैं। सब्ज़ी वाला आया नहीं, दूध वाले की भैंस बीमार है। दूध लेने किसे भेजूं ?"

बनिये की दुकान घर से बाहर दस कदम आगे चौराहे पर है और दूसरा दूध वाला भी सौ-पचास गज़ पर ही बैठता है। लेकिन घर से बाहर निकलने में श्रीमतीजी के पैर की मेंहदी उतरती है। हाथ में थैली लेकर बाहर निकलना उनकी शान के अनुकूल नहीं। प्लास्टिक के चिकने हैंडबेग में आटे-दाल की समाई नहीं हो सकती। इसलिए पतिदेव ही आएंगे तो घर में आटा आएगा।

बात इतने में ही खत्म हो सकती थी कि "ज़रा आटा लिवा

लाइए दूकान से," मगर तब श्रीमतीजी को अपनी वाक्‌चातुरी दिखाने का मौका कब मिलता ? पतिदेव समझाते-बुझाते हैं तो श्रीमतीजी कहती चली जाती हैं—

"मुझे तो आप कुछ दिन की छुट्टी दे दीजिए। न दिन को चैन, न रात को चैन। कोल्हू का बैल भी कुछ देर आराम कर लेता होगा। मैं तो बाज़ आई ऐसी गृहस्थी से। मायके जाकर कुछ दिन आराम कर आऊंगी। फिर उम्र-भर तेली के कोल्हू में तो पिसना ही है।"

पति सोचता है, क्या मैं दिन-भर कोल्हू में नहीं पिसता। मैं किसे जाकर सुनाऊं अपनी दुःख-गाथा ? स्त्री हंसमुख हो तो उससे दो बातें करके दिल बहला ले। लेकिन यहां बोलना तो उबलते तेल की कड़ाही में पानी डालना है।

वाणी पर थोड़ा-सा संयम रखने की कोशिश से ही पत्नी इस कटुता को दूर कर सकती है। प्रेम का फूल कड़वे शब्दों की लू में मुरझा जाता है। शब्दों के विष-बुझे बाणों का घाव कभी नहीं भरता। विष से भरा एक भी शब्द घर के सारे वातावरण को विषाक्त बना देता है। वह ज़हर जीवन-भर नहीं उतरता। विष की गांठें घर-रूपी शरीर में जगह-जगह पड़ जाती हैं।

घर के वातावरण को स्वस्थ बनाने के लिए पत्नी का गृह-प्रबन्ध-कौशल ही पर्याप्त नहीं है, उसकी अध्यात्म भावना भी आवश्यक है। घर के खर्चों के लिए धन की आवश्यकता होने पर भी पत्नी को धन का लोभ छोड़कर धार्मिक भावना में अपना तन-मन रंगना पड़ता है। पत्नी को गृह-लक्ष्मी कहा गया है। उसे गहनों से सजाया जाता है। स्त्री को संसारी मोहों का केन्द्र माना गया है। इन कल्पनाओं का आधार सच्चा नहीं होता, पति-पत्नी की

आत्मिक शक्ति ही उसका निर्माण करती है। आत्मबल ही घर का अवलम्ब है। जिन पति-पत्नी के बीच आत्मिक प्रेम होगा, वही सुखी-सफल गृह-जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

घर की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए और भी बहुत-सी बातें हैं जो मैं तुम्हें लिखना चाहता हूं। उन्हें अगले पत्र में लिखूंगा। यह पत्र यहीं समाप्त करता हूं।

तुम्हारा हितचिन्तक
....

अतिथि-सत्कार

पत्र | ११

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते ।
स तस्मै पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।

किसी घर से अतिथि जब निराश वापस जाता है, तब वह घर के पुण्य बटोरकर ले जाता है और वहां पापों की गठरी छोड़ जाता है ।

प्रिय कमला,

तुम्हें मालूम है, घर हमारे संपूर्ण सांस्कृतिक जीवन का अंग बन गया है। वह तुम्हारा आश्रयस्थल या पति की आरामगाह ही नहीं है। उसकी विश्रान्ति में समाज के अन्य लोगों का भी भाग है। मनुष्य-मात्र को उस विश्रान्ति की छाया में कुछ देर विश्राम करने का अधिकार है। घर के उजाले में समाज के अन्य लोग भी कुछ देर प्रकाश पाने का अधिकार रखते हैं।

तभी गृह-जीवन में अतिथि-सत्कार को बड़ा गौरवास्पद स्थान दिया गया है। अतिथि का अभिप्राय जान-पहचान वाले बाहरी आदमी या मित्रों-सम्बन्धियों से नहीं है। मित्रों व सम्बन्धियों को तो अतिथि कहना ही नहीं चाहिए। वे तो घर के ही आदमी हैं। उनका सत्कार तो पुरस्कार की भावना से भी हो सकता है। वह निष्काम सत्कार नहीं है। अतिथि वह है जिसका नाम-धाम, जात-पांत या ठौर-ठिकाने का भी ज्ञान न हो। वह बिल्कुल अजनबी और विचित्र देश का भी हो सकता है। उसके

स्वागत-सत्कार को ही कामना-रहित सत्कार कहेंगे। इसी सत्कार का माहात्म्य आतिथ्य के गौरव को ऊंचा उठाता है।

जिन घरों का द्वार केवल स्वजनों के लिए खुलता है, उनमें बाहर का प्रकाश बहुत कम पहुंचता है। उनकी ऊंची दीवारें केवल अन्धकार को ही समेटकर रखती हैं। विश्व में व्याप्त असीम प्रेम और सहानुभूति को स्पर्श करती हुई हवा उन घरों के बन्द वातायनों से टकराकर वापस आ जाती है।

वे घर ऊंचे पहाड़ों पर बने उन दुर्गम दुर्गों की तरह हैं जो अपने से इतर सभी मनुष्यों पर अविश्वास करके बनाए गए थे। इनकी रचना मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को ही प्रमुख मानकर हुई थी। एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य की हिंसक वृत्तियों से अपनी रक्षा करने के लिए इनका निर्माण किया था।

घर के निर्माण का आधार यह भय नहीं होना चाहिए। घर की दीवारों से प्राचीर का काम नहीं लेना चाहिए। उसके पवित्र वातावरण में मनुष्यों को देवता बनाने की क्षमता है। घर का राज्य आसपास या दूर के सभी सज्जन व्यक्तियों के लिए पवित्र तीर्थस्थान के तुल्य होता है।

आज बहुत कम घर ऐसे हैं जो ऐसे अतिथि का सत्कार करते हैं। दुनिया में छल-कपट इतना बढ़ गया है कि आज तो घर का दरवाज़ा खोलते हुए भी गृहिणी को डर लगता है। घरों के दरवाज़ों में एक झरोखा-सा बना होता है। उस झरोखे में से देखकर जानी-पहचानी सूरतों के लिए ही दरवाज़ा खोला जाता है। उसके सत्कार की बात तो अलग, उसे पानी तक पूछने का अवकाश नहीं होता किसीको। गृह-पत्नी उसे जल्दी विदा करने की तरकीबें करती है।

हमारी संस्कृति में घर का आदर्श तो यह है कि प्रत्येक गृहस्थ अपने ग्राम या नगर में सबको अन्न-योजना की सहायता देते हुए ही अपनी क्षुधा शान्त करे। गांवों में अब भी यह भावना जागरित है। गांव के हर गृहस्थ को यह ध्यान रहता है कि उनके गांव में कोई भूखा न रहे अथवा कोई राही बेघर पड़ा सारी रात न काटे। किसी गरीब किसान के घर की दहलीज़ पर बैठा कोई परदेसी भूखा नहीं रह सकता—लेकिन शहर में कुबेरों की ड्योढ़ी पर अन्न के दो दानों के लिए तरसता हुआ परदेसी मर सकता है।

यह अंग्रेज़ी शिष्टाचार-पद्धति का दोष है। यह प्रणाली किसी भी अनजान आदमी से बात तक करने से रोकती है। उनके अनुसार विधिवत् परिचय के बिना कोई व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति से बात नहीं करेगा। उसके सत्कार की तो बात ही अलग है। उनके घरों में विना निमन्त्रण पाए कोई नहीं जा सकता। निकट के सम्बन्धी भी विना बुलाए नहीं जाएंगे। और बुलावा भी विशेष अवसर पर ही दिया जाएगा।

हमारे देश में अनिमन्त्रित व्यक्ति का भी खुले दिल से सत्कार किया जाएगा। घरवाली स्वयं भले ही भूखी रह ले, लेकिन अतिथि को भूखा नहीं जाने देगी। स्वयं भूमि पर सो लेगी, लेकिन अतिथि को शय्या देगी। यह ठीक है कि आजकल के कठिन दिनों में ऐसा सत्कार बहुत उदारता से नहीं हो सकता—किन्तु उन कठिनाइयों की आड़ में बिल्कुल रूखा और कृपण होना भी ठीक नहीं। आपका अतिथि भी आज की कठिनाइयों को जानता है।

अनजाने अतिथि का सत्कार कई बार आतिथेय का भाग्य बदल देता है। संकट-काल में की हुई निष्काम सहायता अनेक बार कल्पनातीत फल देती है। एक बार एक सज्जन की गाड़ी मेरे

मकान के सामने खराब हो गई। रात का समय था। उसने बहुत कोशिश की लेकिन गाड़ी ठीक न हुई। रात इतनी हो गई थी कि पीछे लौटने के लिए भी सवारी नहीं मिल सकती थी। हमने उसे रात-भर घर में ही ठहराने और जलपान करके सुबह गाड़ी ठीक होने पर आगे जाने को सलाह दी। वह इस उपकार से इतना कृतज्ञ हो गया कि जाते समय अपना परिचय-पत्र देते हुए बोला—"मेरे योग्य कोई भी काम हो तो बतलाइएगा।" उसके परिचय-पत्र से मालूम हुआ कि वह एक कालेज का प्रिन्सिपल था। बहुत महीनों बाद हमें अपने बच्चे के दाखिले में कठिनाई हुई। उस समय उसके कार्ड की बात याद आ गई और हमारा काम हो गया। वह उस उपकार को भूला नहीं था।

यह तो छोटी-सी बात है। कई बार अनजान अतिथि का सत्कार जीवन-भर की आजीविका के प्रश्न को हल कर देता है। व्यापार-व्यवसाय में ऐसी मुलाकातें आशातीत लाभ दे देती हैं।

घर में जब किसी अनजाने को सत्कार दिया जाता है तो फल की इच्छा से नहीं, बल्कि सत्कार की भावना से ही दिया जाता है। यह सत्कार गृह-जीवन की सात्त्विक अभिव्यक्ति का एक प्रतीक-सा है। घरेलू जीवन के मूल में जो प्रेम का अक्षय सरोवर भरा है, वही इस निःस्वार्थ दान में प्रवाहित होकर बाहर आता है। यह सत्कार करके गृहपति और गृहपत्नी को जो आत्म-सन्तोष मिलता है वही इसका पुरस्कार होता है।

इस सात्त्विक सत्कार का प्रकाश पहले घर के आसपास पड़ता है। पड़ोस के सभी लोग उस घर की सहायता को तैयार रहते हैं। किसी कृपण के घर में चोरी भी हो जाए तो कोई सहायता नहीं करता। उसकी चीख-पुकार सुनकर भी सब

बेखबर-से सोए रहते हैं। किन्तु सत्कार करने वाले के सभी मित्र बन जाते हैं। वह सबको अपना बना लेता है। यह लोकप्रियता उसके जीवन को समृद्धि के मार्ग में बहुत जल्दी बढ़ा देती है।

इसलिए अतिथि-सत्कार की भावना को हृदय में सदा जागरित रखना। तुम्हारे विवाहित जीवन को सफल और सबल बनाने में यह भावना बहुत महत्त्व का भाग लेगी।

घर की व्यवस्था को सुन्दर रखने के लिए शिष्टाचार का भी ध्यान रखना। शिष्टाचार व्यावहारिक कुशलता का ही दूसरा नाम है। दुनिया के लोग तुम्हारे व्यवहार से ही तुम्हारा मान करेंगे। तुम्हारा ज्ञान या तुम्हारे मन के अन्तस् में छिपी सद्भावनाएं व्यर्थ हो जाएंगी, यदि तुम्हारा व्यवहार उनकी गवाही नहीं देगा। सद्भावनाओं की सार्थकता उनके प्रयोग में ही है।

शिष्टाचार का यह प्रयोग केवल घर से बाहर के लिए नहीं है। उसका प्रारम्भ घर में ही होता है। शिष्टाचार में सभ्यतापूर्ण व्यवहार, मधुर भाषण, सुरुचिपूर्ण पोशाक सभी कुछ अन्तर्गत हैं। जिन कोमल भावनाओं और मधुर व्यवहारों से दो युवक-हृदयों का प्रेम प्रारम्भ होता है, उन्हींसे वह प्रेम पनपता भी है और वही मधुर व्यवहार उस प्रेम को स्थायी बना सकता है।

विवाह की मुहर लग जाने के बाद पति-पत्नी इतने लापरवाह हो जाते हैं कि कोमल अनुभूतियों की तो बात अलग, व्यावहारिक शिष्टता को भी भूल जाते हैं। विवाह से पहले अपने व्यक्तित्व के सबसे आकर्षक रूप को प्रकट करने वाले युवक-युवती ही विवाह के बाद अपने निकृष्ट से निकृष्ट रूप को प्रकट करने

लगते हैं।

पहले वे वड़े संकोची, संयत, मृदुभाषी और सौंदर्य के उपासक बनते थे। अब वही फूहड़, मुंहफट और गलीज़ वन जाते हैं। और आश्चर्य यह है कि तब भी उन्हें यह समझ नहीं आती कि उनके विवाहित जीवन में वह रस नहीं है जिसके स्वप्न उन्होंने कुमार-जीवन में लिए थे।

यह उदासीनता दोनों पक्षों को घेर लेती है। स्त्रियां दिन-भर मैले-कुचैले कपड़े पहने रहती हैं। साज-सिंगार की पोटली तभी खुलती है जब कभी बाहर जाना हो। घर में रूखे बाल किए और अटपटी पोशाक पहने सारा दिन बिता देती हैं। साड़ी पर शाक-भाजी पड़ी है तो पड़ी रहे। जम्पर की धज्जियां उड़ गई हैं तो उड़ जाएं। हाथों से प्याज़-लहसुन की बदबू आती है तो आती रहे, अब उन्हें किसीकी नज़र में अच्छी लगने की इच्छा ही नहीं रही। किसीको रिझाने की तमन्ना ही निकल गई। पहले इत्र से नहाती थीं, अब साबुन से नहाना भी छोड़ दिया—स्वच्छता के नियम से भी बेपरवाह हो गईं।

यही लापरवाही बातचीत में है। जो जी में आया, बक दिया। खरी-खरी सुना दी। संयत भाषा का प्रयोग ही भूल गईं। पढ़ा-लिखा चूल्हे में गया। संस्कारिता ताक में रख दी। गालियों तक नौबत आ गई। पतिदेव भी अपने सब गुण भूल गए। घर से बाहर उन्हें शिष्ट व्यवहार के सब नियमों का ध्यान आ जाता है, किन्तु घर में प्रवेश करते ही वे अपने भद्दे रूप में आ जाते हैं।

बाहर की पोशाक बदलते ही फटी-पुरानी, मैली पोशाक पहन ली। नहीं तो चिथडे-चिथड़े हुई गंजी पहने ही घूम रहे हैं।

कमर में मैला तौलिया लपेट लिया है। शरीर की स्वच्छता को तो कब का भुला चुके हैं। दाढ़ी बढ़ आई है। खाना खाते हुए कुहनियों तक सारा हाथ दाल-भाजी में लपेट लिया है।

सुबह तो उठे हैं, नौ बजे तक आंखों की गीद साफ नहीं की। रूखे बालों को संवारने का कष्ट तो किया ही नहीं। घर का नौकर भी उनसे अधिक बन-संवरकर रहता है।

स्त्री से कभी कोमल शब्दों में बातचीत की हो, यह याद नहीं आता। शायद बातचीत किए हुए भी ज़माना गुज़र गया। साथ बैठकर खाने में अपमान समझते हैं। उनके दिल की व्यथा को जानने का भी कष्ट नहीं किया। सहानुभूति के दो वाक्य भी नहीं कहे। अपने साथ घूमने ले जाने में शर्म आती है। कभी ले भी जाते हैं तो वह बेचारी दस कदम पीछे रेंगती आती है। पति-देव अकेले आगे-आगे चलते हैं।

कहां तक गिनाएं? किसी व्यवहार में भी शिष्टता का ध्यान नहीं रखा जाता। अशिष्टता की जीती-जागती मूर्तियां देखनी हों तो किसी भी घर का दरवाज़ा खोल लीजिए। ऐसा लगता है जैसे दो असभ्य, जंगली स्त्री-पुरुषों को एक पिंजड़े में बन्द कर दिया हो। उनकी आंखों में एक साधारण संकोच और लज्जा भी नहीं रहती। मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने वाला उन दोनों के बीच तीव्र घृणा का परदा देख सकता है।

आश्चर्य यह है कि साधारण शिष्टाचार के नियमों का दोनों को खुद ज्ञान होता है। इसलिए उन नियमों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों अपने मन में अपने पुराने प्रेम के नाम पर नहीं तो अपने कुल की मर्यादा, अपनी संस्कारिता के नाम

पर ही उन नियमों का पालन शुरू कर दें।

विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि यदि रस्मी तौर पर भी वे दोनों शिष्टाचार के नियमों का पालन शुरू करेंगे तो उनके जीवन में रस आएगा और यह भी संभव है कि उनका पुराना प्रेम फिर नये रूप में प्रकट हो सके।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

धनोपार्जन और व्यय-व्यवस्था

पत्र | १२

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।।

परंपरागत संपत्ति प्राप्त न होने पर भी अपने को निर्धन न मानो । आमरण धन-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहो । उसे दुर्लभ मानकर निश्चेष्ट मत बैठो ।

प्रिय कमला,

तुमने पत्र में लिखा है कि "हमारे बीच मामूली बातों पर कभी कलह नहीं होता। एक-दूसरे की भावनाओं का हम पूरा आदर करते हैं। हमें एक-दूसरे से सच्चा प्रेम है, किन्तु कई बार रुपये-पैसे के मामले में कुछ ऐसी अड़चनें आ खड़ी होती हैं कि उनका हल नहीं सूझता। घर की व्यवस्था मेरे हाथ है, लेकिन आर्थिक स्वतन्त्रता न होने से मेरे हाथ बंधे हुए हैं। कई बार इतनी लाचारी महसूस होती है कि जी चाहता है कि या तो उनके हाथ ही घर का प्रबन्ध सौंप दूं या खुद कमाकर ही घर की व्यवस्था करूं।"

यह समस्या तुम्हारी ही नहीं, दुनिया-भर की स्त्रियों की समस्या है, और शायद सृष्टि के आदि से चली आई है, सृष्टि के अन्तिम दिन तक रहने के लिए। यही नहीं, इस तरह की सब बातें—जिनका हल केवल मध्यम मार्ग पर चलना है—सदा समस्या के रूप में ही रहेंगी। उनका कोई भी अचूक समाधान नहीं है।

प्रतिदिन अपनी विवेक-बुद्धि से पति-पत्नी को मिल-जुलकर उनका हल करना होगा।

तुम्हारी लाचारी को मैं खूब समझ सकता हूं। तुम्हें अपने पति से जो कुछ मिलता है, घर के खर्चों में चला जाता है। निजी खर्च के लिए तुम्हारे पास कुछ नहीं बचता। कभी किसी सहेली के पास जाना होता है तब भी पति की आज्ञा लेकर जाना पड़ता है। इसलिए नहीं कि उन्हें सहेली के पास जाने में आपत्ति है, बल्कि इसलिए कि आने-जाने में रुपया दो रुपया खर्च होंगे। इस अतिरिक्त व्यय के लिए तुम्हें पति के सामने हाथ पसारना पड़ता है।

यह मोहताजी अकेले तुम्हारी नहीं है। यह इसलिए भी नहीं है कि तुम्हारे पति की आय बहुत मामूली है। मैंने बड़े संपन्न घरों में भी पत्नियों को पैसे-पैसे के लिए तरसते देखा है। जैसा जी में आए खर्च कर सकें, इस तरह का कोई निजी धन उनके पास नहीं होता। घर-भर में उनके पास अपने गहने के अलावा, ऐसी कोई नकदी नहीं होती जिसे वे अपना कह सकें। उनके ट्रंकों में बीसियों कीमती साड़ियां होंगी, सैण्डिलों के जोड़े होंगे, लेकिन अगर उन्हें बाजार से अपने मन की आठ आना मूल्य की एक पुस्तक भी खरीदनी होगी तो पड़ोसी से आठ आना उधार लेने पड़ेंगे।

पतिदेव चाहेंगे तो उन्हें सैकड़ों की साड़ियां ला देंगे—लेकिन वे चाहेंगी तो एक रूमाल भी अपनी पसन्द से नहीं खरीद सकेंगी। आसपास के मित्रों या दूकानदारों से उधार मांगने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा नहीं होगा।

विवाह दो समकक्ष स्त्री-पुरुष के साहचर्य से होता है। जहां एक को अपने अधिकार से पाई भी खर्च करने की स्वतन्त्रता न

हो वहां समकक्षता कहां रह सकती है ? इस अवस्था में पत्नी का काम खरीदे गुलाम का सा रह जाता है। पत्नियों को घर का कठोर से कठोर काम करना पड़ता है। काम के घण्टों की मर्यादा भी नहीं होती। दुकान या कारखाने के मज़दूर भी निश्चित समय तक ही काम करते हैं। पत्नी की गुलामी चौबीस घंटों की है। उसके काम में कुछ दिनों के विराम की गुंजाइश भी नहीं। पतिदेव अवकाश पर होंगे तो काम का भार दुगुना हो जाएगा। कभी-कभी मां के घर जाकर उन्हें कुछ विराम मिलता है। किन्तु वहां भी बूढ़ी मां के कामों का भार कम नहीं होता।

दु:ख यह है कि इतने कठोर परिश्रम के बाद भी उसकी कोई नैतिक या वैधानिक स्थिति नहीं मानी जाती। विधान भी उन्हें 'आश्रित' मानता है। वैधानिक परिभाषा में उनकी गणना बच्चों के साथ 'आश्रित-वर्ग' में ही होती है।

इस अपमान को धोने के लिए कुछ पत्नियां स्वयं धनोपार्जन में लगने का विचार करती हैं। यह विचार प्रायः विचार तक ही सीमित रह जाता है। पहले तो उन्हें अपने पतिदेव की स्वीकृति नहीं मिलती। फिर स्त्रियों के लिए धन कमाने के रास्ते भी बहुत कम हैं। पुरुषों ने धन कमाने का काम अपने हाथों में लिया हुआ है। स्वतन्त्र रूप से आजीविका कमाने का मार्ग स्त्रियों के लिए बड़ा पथरीला है।

जहां स्त्री कमाकर लाती है वहां भी आधे की हिस्सेदारी प्राप्त नहीं कर पाती। पुरुषों की मानसिक अवस्था ऐसी हो गई है कि वे स्त्रियों की आय का कोई भी भाग लेना अपने पौरुष पर कलंक समझते हैं। यदि दोनों की आय को एक ही जगह रखकर घर का खर्च चलाया जाए तो भी क्रियात्मक कठिनाइयां आती हैं। पुरुष

अपनी आमदनी को एकमात्र व्यापारिक कार्यों में ही लगाना चाहता है। व्यापारिक जीवन के मित्रों के स्वागत-सत्कार में भी कुछ खर्च करना पड़ता है। संकटकाल के लिए भी बचाना चाहिए। इन सबकी व्यवस्था का निर्णय पुरुष अपने हाथ में ही रखेगा, स्त्री के हाथ में इस निर्णय का अधिकार नहीं देगा।

इस पेचीदा समस्या का हल केवल पुरुष की विवेक-बुद्धि पर आश्रित है। उसे पत्नी की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। मां-बहन और पत्नी के रूप में स्त्रियां पुरुष की जो सेवा करती हैं उसका कुछ भी पुरस्कार उन्हें नहीं मिलता। हम अपने वीर-पुरुषों की स्मृति में ऊंचे-ऊंचे स्मारक बनाते हैं, किन्तु उनकी सफलता के लिए स्वयं को मिटा देने वाली पत्नियों का नाम तक नहीं लेते। पत्नियों के बलिदान की याद दिलाने वाली एक भी मूर्ति हमने स्थापित नहीं की। स्मृति-चिह्न बनाना तो दूर, हम कभी उनकी सेवाओं के प्रति कृतज्ञता भी प्रकाशित नहीं करते। कभी प्रशंसा के दो शब्द भी पति के श्रीमुख से नहीं निकलते।

पुरुष की कृतघ्नता इस हद तक पहुंच गई है कि हम स्त्रियों को निजी खर्चों के लिए थोड़ा-बहुत स्वतन्त्रतापूर्वक खर्च कर लेने का अधिकार भी नहीं देते। यह अन्याय की पराकाष्ठा है। प्रत्येक पत्नी को घर के खर्चों के अलावा जेब-खर्च का पैसा अवश्य मिलना चाहिए। पति की आय पर पति का ही नहीं सम्पूर्ण परिवार का अधिकार है। आय थोड़ी हो या बहुत, जिस तरह पति को अपने जेब-खर्च की ज़रूरत है, पत्नी को भी है। पति अपने परिवार के पोषण के लिए परिश्रम करता है तो पत्नी भी तो पति का पोषण करने के लिए तन-मन से मेहनत करती है। वह पति को परिश्रम के योग्य बनाती है—ठीक उसी तरह जिस

तरह सेना का रसद-विभाग या परिचर्या-विभाग युद्ध में गए अगले दस्तों को युद्ध करने के योग्य बनाता है, घायलों की सेवा करता है। पिछले महायुद्ध में ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री मि० चर्चिल प्रायः कहा करते थे कि "ब्रिटेन का युद्ध जर्मनी के रणांगण में नहीं बल्कि ब्रिटेन के कारखानों में लड़ा जा रहा है।" कौन नहीं जानता कि युद्ध की सफलता का श्रेय सैनिकों को ही नहीं देश के मज़दूरों को भी मिला था। वे युद्ध-सामग्री बनाने में तन-मन न लगाते तो सैनिक कुछ भी न कर सकते।

विवाह की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने में भी पुरुष का उतना ही भाग है जितना युद्ध के मैदान में गए सैनिकों का होता है। इससे अधिक मांग करना पतियों की ज़्यादती है। विवाह भी एक भागीदारी का व्यापार है। दोनों भागीदारों को अपने काम पर गर्व होना चाहिए और समझना चाहिए कि एक-दूसरे की सहायता के बिना यह व्यापार नहीं चल सकता।

जो पति इस सचाई को भूल जाते हैं, उन्हें अपनी पत्नियों से भी सच्चे सहकार की आशा नहीं रखनी चाहिए। पत्नी भी उनकी भावनाओं का आदर करना छोड़ देती है। पति की अयुक्ति-युक्त कृपणता पत्नियों को फिज़ूलखर्च बना देती है। मितव्ययी होने का जब उन्हें कोई इनाम नहीं मिलता तो वे बेपरवाह अप-व्ययी हो जाती हैं। वे सोचने लगती हैं कि सारी कंजूसी वे अपनी ही जान पर क्यों करें? पति का खर्च शाही ढंग से हो रहा है। पति के मित्रों पर भी सैकड़ों स्वाहा हो रहे हैं। उसे एक-एक पैसे के लिए हाथ पसारना पड़ता है। संकटकाल के लिए उसके पास एक पाई भी बचा नहीं है। तब वह या तो लापरवाह हो जाती है या छल-कपट से अपने पास कुछ पूंजी जमा करने के

निमित्त दांव-पेच शुरू कर देती है। कौन स्त्री कौन-से मार्ग को ग्रहण करेगी, यह उसके स्वभाव पर निर्भर करता है।

कुमुद के पति को एक हज़ार रुपये मासिक मिलता है। किंतु कुमुद के हाथ कभी दस रुपये का नोट भी न रहा। पतिदेव कभी दफ्तर जाने से पहले दो रुपये दे जाते हैं, वे शाक-भाजी के काम आते हैं। बाकी सब खर्चों का हिसाब पतिदेव स्वयं करते हैं। नौकर की तनखाह भी पतिदेव देते हैं। उनकी नियुक्ति भी उन्हीं के हाथ है। परिणाम यह है कि नौकर कुमुद की बात नहीं मानता। उसे घर में कुमुद की स्थिति अपनी स्थिति से बेहतर नहीं लगती। वह जानता है कि वह एक वेतनभोगी नौकर है और कुमुद अवैतनिक नौकरानी। शायद अपने दर्जे को ही वह ऊंचा समझता है।

एक हज़ार रुपये पाने वाले की पत्नी होकर भी वह भिखारिन से ज़्यादा नहीं। रोज़ मांगकर ही उसे घर के खर्च चलाने पड़ते हैं। पहले तो उसे हाथ पसारने में संकोच होता था। अब उसने संकोच छोड़ दिया है, मांगने पर ही कमर कस ली है। जितनी देर पतिदेव घर में रहते हैं, मांगने का क्रम जारी रहता है। और मांगती भी पांच के पचास है। नौकर को भी खुले हाथ देती है। वह बीच में रुपये, दो रुपये खा ले तो भी परवाह नहीं करती। उसकी जेब से तो नहीं जाता। बच्चे के एक सूट की ज़रूरत है तो दस के लिए ज़िद करती है। अपने लिए साड़ी की मांग आए दिन पेश कर देती है। यहीं से अपव्यय प्रारम्भ होता है।

उसे मालूम है, जो वह हाथ से खर्च कर लेगी उसीमें उसका भाग है। बचत से उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। बचत के धन में उसका कोई भाग नहीं होगा। बचत में भाग रखने का एक ही

उपाय है—गहने बनवा लो। किसी न किसी बहाने गहने की मांग चालू रहती है। पतिदेव यह नहीं कह सकते कि गहनों लायक पैसा नहीं है; क्योंकि तब पतिदेव को अपनी आय का ब्यौरा देना पड़ेगा, उन्हें अपने खर्चों का हिसाब पेश करना पड़ेगा। पत्नी के सामने हिसाब देना वे अपनी शान के अनुकूल नहीं समझते। हिसाब कभी रखा ही नहीं। जितना आया खर्च कर लिया, दावतों में उड़ा दिया। उन दावतों का हिसाब पत्नी को कहां तक बताएं! आखिर उसका मुख बन्द करने के लिए गहने बनवाने पड़ते हैं। अन्दर-बाहर दोनों ओर अपव्यय चल पड़ता है। बाहर मित्रों की दावतों में और घर में गहनों में। नतीजा यह होता है कि संकटकाल के लिए कुछ बचता नहीं। रोगी होने पर भी कर्ज़ लेकर डाक्टरों के बिल चुकाने पड़ते हैं।

इसके विपरीत—सुधा का पति केवल तीन सौ पचास रुपये कमाता है। जो कुछ लाता है सुधा के हाथ में दे देता है। सुधा मितव्ययिता से खर्च करके बीस-पचीस रुपये बचा लेती है। गहनों की उसने कभी मांग नहीं की, साड़ी के लिए कभी पैसे नहीं मांगे—क्योंकि जो कुछ बचता है उसमें उसका भाग है। वह जानती है कि गहनों की सूरत में रुपया रखने के बजाय सरकारी कागज़ में रुपया लगाना लाभप्रद है। दस-बारह साल में वह धन ड्योढ़ा हो सकता है। गहनों की रकम तीन-चौथाई रह जाएगी।

सुधा को पुरानी साड़ी पहनने में भी आपत्ति नहीं। उसका सन्तोष नई साड़ी में नहीं बल्कि उस सुरक्षा में है जो उसे मितव्ययिता से बचाए धन से मिलती है।

सुधा समझदार स्त्री है; कुमुद मूर्ख है। किन्तु सुधा को समझदार और कुमुद को मूर्ख उनके पतियों ने ही बनाया है। जिस घर में

स्त्री को पति की आय में पूरी तरह भागीदार नहीं बनाया जाएगा वह घर सदा अशान्त रहेगा। कोई भी स्त्री स्वभाव से फिज़ूलखर्च नहीं होती। गहनों का प्रेम भी उनमें प्राकृत नहीं है। पतियों की अहम्मन्यता और कृपणता ही पत्नियों में ये दुर्गुण पैदा कर देती हैं। ऐसी पत्नियां पति की जेब से रुपया निकलवाने की नई-नई तरकीबें सोचा करती हैं। सबसे पहले वे अपने रूप-यौवन को ही हथियार बनाती हैं। पति को रिझाने के लिए आवश्यकता से अधिक शृंगार करने लगती हैं। सच जानना—आजकल पत्नियों के अतिशय शृंगार के पीछे प्रायः यही भावना छिपी होती है। कितना पतन है! कितनी लज्जा की बात है! किन्तु यह सच है, सोलह आने सच है।

जवानी के दिन ढलने के बाद इन स्त्रियों के हाथ, सन्तान के के प्रति पति का प्रेम हथियार बन जाता है। बच्चों की आवश्यकताओं को बढ़ा-चढ़ाकर वे पति की जेब से मनमानी रकम लिया करती हैं। उनका यही विचार होता है कि बच्चे पर व्यय हुए धन में उनका भी भाग रहेगा। ऐसी भी स्त्रियां हैं जो लड़के-लड़कियों की शादियों में अधिक से अधिक रुपया खर्च करने पर पति को मजबूर करती हैं। मुझे ऐसे घर मालूम हैं जहां पति को ज़मीन-जायदाद बेचकर भी पत्नी की इस मांग को पूरा करना पड़ा है। कर्ज़े के भारी बोझ से दबकर भी उन्हें यह धन खर्च करना पड़ता है।

यह सन्तान-प्रेम नहीं, स्वार्थ है। बच्चे के नाम पर अपनी झूठी प्रतिज्ञा को कायम करने का नीचतापूर्ण कार्य है। मुझे ऐसे पतियों पर दया आती है। किन्तु, यह भी उनके ही मूर्खतापूर्ण कामों का परिणाम-है। यदि वे पहले ही अपनी आय म पत्नियों

को भागीदार बना लेते तो यह अपव्यय नहीं होता।

मैं ऐसे अनेक पतियों को जानता हूं जो सन्तान की शिक्षा, शादी आदि अवसरों पर पत्नी का दबाव मानकर शक्ति से अधिक व्यय करने के बाद कंगाल हो गए। वृद्धावस्था में उन्हें सन्तान का आश्रय लेना पड़ा, जो सन्तान की शादी के बाद इतना अपमानजनक हो गया कि उन्हें आत्महत्या करके ही शरीर का अन्त करना पड़ा।

कुछ दिन पहले बम्बई में एक साठ साल के वृद्ध ने समुद्र में डूबकर मरने का निश्चय किया था। पुलिस ने उसे समुद्र से निकाल लिया। आत्महत्या का कारण पूछने पर अदालत में उसने बताया कि अपने पुत्रों को सब कुछ देने के बाद केवल उनसे दस-दस रुपया महावार लेता था। पुत्रों ने वह रकम भी देनी बन्द कर दी। पुत्रों की इस कृतघ्नता पर वह दुखी होकर मरना चाहता था।

वृद्धावस्था में पति-पत्नी का इस तरह मोहताज होना ठीक नहीं। उन्हें अपने पास कुछ धन अवश्य संचित करके रखना चाहिए। संपूर्ण संचय को सन्तान की शादी पर लगवा देना प्रायः माता की इच्छा से होता है। बहुत-सी स्त्रियां मां बनकर पत्नी की ज़िम्मेदारियों को भूल जाती हैं। वे सन्तान की अनुचित मांगों को पूरी करने के लिए भी पति को भारी संकट में डाल देती हैं—पत्नी-प्रेम मातृ-प्रेम के आगे झुक जाता है।

इन अवस्थाओं में भी प्रायः स्वार्थ की ही प्रेरणा होती है। माता समझने लगती है कि पुत्रों का अवलम्ब पति के अवलम्ब से अधिक पुष्ट है। उसे बूढ़े पति से विरक्ति हो जाती है। वह समझने लगती है, जिस व्यक्ति ने उसे जवानी में अपना सच्चा

भागीदार नहीं बनाया, अपनी कमाई का हिस्सा खुशी-खुशी नहीं दिया, वह बुढ़ापे में क्या देगा! अपने पुत्रों पर उसका भरोसा बढ़ जाता है। यह स्वाभाविक भी है। किन्तु यह बात पति-पत्नी के लिए बड़ा दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्य से बचने का उपाय पति के ही हाथ में है। उसे अपनी कमाई को अपना ही नहीं समझना चाहिए। उसपर स्त्री का भी पूरा अधिकार है। वह साझे की कमाई है। दोनों को मिलकर उस आय के उचित व्यय का प्रबन्ध करना चाहिए।

व्यवस्था वहीं हो सकती है जहां पहले से योजना बनाई जाए। आमदनी के उचित तरीके ढूंढ़ने में जितना परिश्रम किया जाता है उससे एक-चौथाई भी उस आमदानी के खर्चे की योजना बनाने में कर लिया जाए तो इस समस्या का हल स्वयं हो जाए। आमदनी कम हो या अधिक, योजनापूर्वक ही उसके व्यय की व्यवस्था होनी चाहिए।

योजनाहीन व्यय का परिणाम यह होता है कि कई बार हम आवश्यक खर्चों में भी कमी कर देते हैं और अनावश्यक खर्चों में रुपया बहा देते हैं। मितव्ययिता भी कला है। कुछ लोग थोड़ी आमदनो में भी अमीरी ढंग से रह लेते हैं, और कुछ लोग उससे दूनी आमदनी में भी कंगाली का जीवन बिताते हैं। अपनी रुचि और परिस्थितियों को देखकर हर घर में व्यवस्था बननी चाहिए। जो इस व्यवस्था बनाने के योग्य न हों वे विवाहित जीवन के अयोग्य हैं। उन्हें विवाह करना ही नहीं चाहिए।

हमारे घरों में ऐसी अव्यवस्थित स्त्रियों व पुरुषों की सख्या कम नहीं है। मैं जानता हूं, ऐसी सैकड़ों स्त्रियां हैं जिनकी अलमारियां कीमती साड़ियों से भरी हुई हैं, लेकिन उन्हें यही शिका-

यत हैं कि आज पहनने की साड़ी नहीं सूझती। हज़ारों रुपये की आमदनी है, लेकिन मौके पर डाक्टर की फीस अदा करने को रुपया नहीं मिलता। ऐसे भी आदमी हैं जो वेतन मिलने के पांच दिन बाद कंगाल हो जाते हैं; सारा महीना कर्ज़ लेकर बिताना पड़ता है।

ऐसे अव्यवस्थित चित्त के स्त्री-पुरुष कभी विवाहित जीवन को सफल नहीं बना सकते। आर्थिक सुव्यवस्था सफल विवाह का आधारभूत गुण है।

तुम्हें चाहिए कि अपने पति को इस व्यवस्था का महत्त्व समझाओ। उनके मन में तुम्हारे प्रति सच्चा प्रेम होगा तो वे तुम्हारी बात को कभी नहीं टालेंगे।

मितव्ययिता के लिए फ्रैंकलिन का एक वाक्य दोहराना पर्याप्त समझता हूं: "Beware of little expenses. A small leak will sink a great ship." छोटे खर्चों में मितव्ययी होओगी तो बड़े खर्चे खुद बच जाएंगे।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

स्त्रियां और धनोपार्जन

पत्र | १३

- धनोपार्जन का मार्ग बहुत पथरीला है;
- धनोपार्जन और तुम्हारा व्यक्तित्व;
- स्वयंजीवी दम्पती के जीवन में कड़वापन;
- पुरुष के स्वाभिमान पर ठेस;
- पति के व्यवसाय में यथाशक्ति सहयोग दो;

प्रिय कमला,

पिछले पत्र में तुमने एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है—क्या पत्नी को स्वतन्त्र रूप से धन कमाने का कोई अधिकार नहीं ?

मालूम होता है तुम पति की सीमित आय से सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारे मन में ऊंचे रहन-सहन की इच्छा जाग गई है। जिस मकान में तुम रहती हो, वह शायद उतना भव्य नहीं जितना तुम्हारी बहन का है। उसमें नये ढंग का बाथरूम नहीं है। ड्राइंग रूम के लिए तुम बढ़िया सोफा लेना चाहती हो। चाय की प्यालियां उतनी सुन्दर नहीं हैं जितनी बड़े होटलों में होती हैं। साड़ियां भी कई बरस से तुम नहीं ले पाईं; वही विवाह वाली पुराने फैशन की साड़ियां अभी तक चल रही हैं। अब नये फैशन के बार्डर और 'प्रिंट' आ गए हैं—बड़ी दुकानों के 'शोकेसों' में देख आई हो। तुम्हारे पति की आय में से तुम इतना नहीं बचा पातीं कि ये सामान खरीदे जा सकें। इसलिए अपनी आय भी चाहती हो।

ऊंचे रहन-सहन की इच्छा बहुत स्वाभाविक है। आखिर मनुष्य इस ऊंचाई तक पहुंचने के लिए ही स्वास्थ्य की चिन्ता छोड़कर भी दिन-रात पिसता है। तुम्हारे पति वकील हैं— कचहरी में भली-बुरी बात सुनते हैं—रात को देर तक बैठे मोटी-मोटी किताबों से माथा भिड़ाते हैं। किसलिए? ऊंचे रहन-सहन के लिए ही तो। ऊंचे रहन-सहन की इच्छा ही हमारी सभ्यता की सबसे बड़ी प्रेरणा है। भौतिकवाद में यही मनुष्य-जीवन का सबसे पवित्र आदर्श है। मैं इसका मान करता हूं। तुम्हारे मन में भी यही आदर्श जागा है। तुम भी ज़माने के साथ जीना चाहती हो। यह जीवन की निशानी है। अपनी अवस्था से तुम्हें असन्तोष है। तुम उस अवस्था को उन्नत करने में सहायक बनना चाहती हो; पति के काम में हाथ बंटाना चाहती हो। यह इच्छा भी बड़ी स्वाभाविक प्रतीत होती है। सहकारिता की इच्छा ही विवाह की मूल भावना है।

फिर भी तुमने मुझसे पूछा है। तुम्हें सन्देह है कि इस कार्य में समाज की अनुमति नहीं मिलेगी। संभव है तुम्हारे पतिदेव ने भी सहमति न दी हो। उन्होंने कहा होगा—

'मुझे ऊंचे रहन-सहन की भूख नहीं। मेरे लिए यह सीधा-सादा घर ही स्वर्ग है। तुम इस घर की रानी हो। मैं नहीं चाहता कि तुम धन कमाने की कशमकश में पड़ो। तुम्हारा फूल-सा कोमल शरीर इस संघर्ष में कुम्हला जाएगा। संसार के छल-कपट तुम्हारे दिल को मसोसकर रख देंगे।'

तुम्हारे मन में आया होगा कि तुम्हारे पति कोमलता की झूठी दुहाई देकर तुम्हारे स्वतन्त्र धनोपार्जन के अधिकार को छीनना चाहते हैं। वे भी दूसरे स्वार्थी पतियों की तरह तुम्हें घर

की दासी बनाकर रखना चाहते हैं। तुम्हारा मन विद्रोही हो उठा होगा। तुमने सोचा होगा कि तुम भी पढ़ी-लिखी हो, कमा सकती हो। माता-पिता ने पढ़ाई में हज़ारों रुपये खर्च किए हैं। तुमने रातों जागकर अपने को शिक्षित बनाया है। क्यों न इस योग्यता का उपयोग किया जाए! पुरुष लोग इससे बहुत कम योग्य होने पर भी इतना कमा लेते हैं और गर्व से सिर ऊंचा करके रहते हैं। मैं भी वैसा ही करूंगी। पति को मुझपर अंकुश रखने का कोई अधिकार नहीं···आदि आदि।

मुझे पत्र लिखने से पहले ही यदि तुम अपने मन में कुछ निश्चय कर चुकी हो तो भी मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा। धन कमाने का तुम्हें अधिकार है। घर की गाड़ी चलाने के लिए यदि यही एक मार्ग रह गया हो तो इसमें भी हानि नहीं। किन्तु घर की भलाई के मार्ग का निश्चय तुम्हारी और पति, दोनों की सलाह से होना चाहिए। विद्रोह से नहीं। अन्यथा इस विद्रोह का बड़ा दाम चुकाना पड़ेगा। विद्रोह किसी सिद्धान्त के प्रश्न पर ही सजता है। तुम्हारे धनोपार्जन का प्रश्न तो व्यवस्था की सुविधा का प्रश्न है, सिद्धान्त का नहीं। निरे व्यवस्थात्मक प्रश्न को इतनी तूल देना ठीक नहीं।

घर की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमारे पुरखों ने सोचा था कि पुरुष और स्त्री अपनी-अपनी योग्यतानुसार कार्य-विभाजन कर लें। किसी भी हिस्सेदार के कार्य में अधिकार-क्षेत्र का बंटवारा आवश्यक होता है। जो भागीदार जिस विभाग के काम में अधिक योग्य होता है उसे वही विभाग सुपुर्द किया जाता है। इस विभाजन का अभिप्राय यह नहीं होता कि वह हस्तांतरित विभागों के संचालन में असमर्थ है बल्कि यह

होता है कि वह उनकी अपेक्षा अपने अधीन के कामों में विशेष दक्षता रखता है। पुरुष की प्राकृतिक शक्तियां उसे धनोपार्जन या बाहरी कामों के अधिक योग्य बनाती हैं। स्त्री को प्राकृतिक शक्तियां उसे घरेलू कामों को संभालने के अपेक्षाकृत अधिक योग्य बनाती हैं।

यह विभाजन समाज के औसत स्त्री-पुरुष की योग्यताओं को देखकर किया गया था। इसमें अपवाद भी हो सकते हैं। इसका बिल्कुल विपर्यय भी हो सकता है। जिन घरों में सेवक रसोइये होते हैं वहां स्त्री की अपेक्षा पुरुष सेवक ही अच्छी रसोई बना सकते हैं। स्त्रियां भी लड़ाई के मैदान में तलवार चलाने वाली हुई हैं। साम्राज्यों का संचालन उनके हाथ में रहा है। किन्तु उन उदाहरणों को अपवाद ही मानना पड़ेगा।

तुम भी अपवाद बनकर कोई अनोखा काम करने की हिम्मत रखती हो तो कोई शक्ति तुम्हें रोक नहीं सकती। किन्तु केवल ऊंचे रहन-सहन की इच्छा इतनी बड़ी प्रेरणा नहीं है कि तुम अपवाद बनने का यत्न करो। तुम्हारे इस यत्न से घर के कार्यों में जो विभाजन निश्चित हो चुका है वह भंग हो जाएगा। तुम्हें अपना काम घर के नौकरों पर छोड़ना होगा अथवा तुम्हारे पति को उनकी चिन्ता करनी पड़ेगी। अपनी व्यावसायिक चिन्ताओं के साथ एक चिन्ता बढ़ जाएगी। मनुष्य की शक्तियां तो परिमित ही होती हैं। वकालत-व्यवसाय को उत्कर्ष देने में जो समय और शक्ति का व्यय होता है वह जब घर के काम में लगाना पड़ेगा तो व्यवसाय को क्षति अवश्य पहुंचेगी।

मुझे निश्चय है कि उस क्षति की पूर्ति तुम अपने धनोपार्जन के प्रयत्न से नहीं कर सकोगी। आजीविका कमाना उतना

आसान नहीं जितना तुम समझती हो। केवल ऊंची पढ़ाई के बल पर धन कमाने का दावा भरती हो, यह भ्रम है। धन-संग्रह की पाठ-विधि विश्वविद्यालयों की पुस्तकों में नहीं है। अपनी शिक्षा के बल पर ही तुम धनोपार्जन नहीं कर सकोगी।

यह धन कमाने का रास्ता इतना पथरीला है कि सचमुच तुम्हारे पति के शब्दों में तुम्हारी फूल-सी देह कुम्हला जाएगी। हो सकता है, तुम देह की चिन्ता न करो। अनथक परिश्रम के लिए कमर कस लो। लेकिन आजकल धनोपार्जन परिश्रम से नहीं, टेढ़े-तिरछे रास्तों से होता है। इन रास्तों पर चलना बरसों के अभ्यास से आता है।

तुम्हारे लिए वे रास्ते अभी बिल्कुल अनजाने हैं। तुम्हारी आत्मा उन पेचीदा रास्तों पर चलने की गवाही नहीं देगी। यह संघर्ष तुम्हारी कोमल भावनाओं को नष्ट कर देगा; तुम्हारे पति को यही भय है। वे अपने जीवन-साथी में आत्मा की कोमल अनुभूतियों का उत्तम भण्डार चाहते हैं। उनका नाश होने पर तुम्हारा नारीत्व, तुम्हारा मातृत्व नष्ट हो जाएगा। चांदी के कुछ टुकड़े पाकर भी तुम अपने वास्तविक धन से कंगाल हो जाओगी।

धनोपार्जन की आत्मनिर्भरता तुम्हारे अन्दर आत्मविश्वास और आत्मप्रतिष्ठा के भावों की वृद्धि करेगी—यह धारणा भी अविचारपूर्ण है। पति द्वारा अर्जित धन में भी तुम्हारा उतना ही स्वामित्व है जितना घर के स्वामित्व में पति का है। इस स्वामित्व को तुमने भीख मांगकर नहीं लिया—अधिकारपूर्वक लिया है। और समाज तुम्हारे इस अधिकार को मानता है, पति भी मानता है। तब तुम्हें अपने अधिकार में सन्देह क्यों होता है? कुछ पति यह अवश्य समझते हैं कि वे स्त्री को आश्रय देकर

भिक्षा देते हैं, किन्तु समाज ऐसे पतियों को अच्छा नहीं समझता। कुछ पत्नियां भी तो ऐसी हैं जो पति को घर की सुविधाएं देकर बड़ा उपकार किया मानती हैं। यह मानसिक अवस्था केवल विकृत व्यक्तियों की है।

तुम तो बहुत समझदार हो। यह न समझो कि तुम्हारे व्यक्तित्व का विकास केवल तुम्हारी कमाने की योग्यता से होगा। धनोपार्जन की योग्यता मनुष्य के व्यक्तित्व-निर्माण में इतना भाग नहीं लेती जितना उसके अन्य मानवीय गुण। स्त्री का व्यक्तित्व सफल पत्नी और माता बनकर ही पूर्णता को प्राप्त होता है।

स्वयं धन कमाकर ऊंचे रहन-सहन की लालसा ने हमारे कई घरों में अशान्ति की आंधी चला दी है। मेरे एक मित्र हैं 'नरेश'। उनकी पत्नी का नाम तो था सावित्री पर प्यार से वह उसे 'सावी' कहकर बुलाया करते थे। विवाह के बाद दोनों ने मिलकर प्यार का घोंसला बनाया। अपने घर को वह इसी नाम से याद करते थे। सचमुच वह प्यार का घोंसला था। तिनकों से बना घोंसला संगमरमर के पत्थरों से बने किलों से अधिक सुन्दर होता है। उस घोंसले में जलता हुआ प्यार का दीपक राजसी प्रासादों के झाडफानूसों से ज़्यादा प्रकाश देता है।

कई वर्ष तक प्यार का यह दीपक आंधी-झोंकों के आघात से बिना डोले जलता रहा। लेकिन, एक दिन नरेश के मित्र ने 'सावी' के मन में ऊंचे रहन-सहन की इच्छा का विष भर दिया। 'सावी' के कंठ में कोयल की झंकार थी। उसने रेडियो में गाकर धन और यश पैदा करने का प्रलोभन दिया।

'सावी' का नाम अखबारों में छपा। उसके सुरीले गाने पर

'हज़ारों' के सिर झूम गए। 'सावी' को पैसा भी मिला और यश भी। नरेश ने पत्नी की इच्छा में रुकावट नहीं डाली। 'सावी' भी नियमित रूप से पैसा लाने लगी। सजावट ऊंचे दर्जे की हो गई। नये ढंग का फर्नीचर आ गया। परदों की शोभा से घर जगमगा उठा। 'सावी' उन्हें देखकर फूली नहीं समाती थी। लेकिन नरेश की आंखों में उदासी थी। उसके 'अहंभाव' पर ठेस पहुंची थी। उसे अपनी असमर्थता पर दुःख था। उन नये परदों और नये फर्नीचर को जब भी वह देखता था तो यही अन्तर्-ध्वनि आती थी कि 'तू अपनी गृहस्थी का भार उठाने के भी योग्य नहीं। घर के खर्चों को चलाने में भी पत्नी का सहारा ले रहा है।'

'सावी' जब बाहर से आती थी तो वह रेडियो स्टेशन के डायरेक्टर और अन्य गायकों की चर्चा करती थी। नरेश को अपनी बातें कहने का अवसर ही नहीं मिलता था। कई बार 'सावी' को रेडियो स्टेशन से लौटने में देर हो गई, तो नरेश को खुद ही खाना बनाना पड़ा। कई बार वह घर में अकेले चुपचाप बैठा रहता। यह अकेलापन बड़ा खतरनाक है। इसी अकेलेपन के लिए जीवन का साथी ढूढ़ा जाता है। साथी होने पर भी यह अकेलापन निभाना पड़े तो विवाह की व्यर्थता सामने आ जाती है।

पुरुष थका हुआ घर आता है। वह किसीके प्रेम में दुनिया की ऊंच-नीच और सफलता-असफलता के संघर्ष को भूल जाना चाहता है। एकच्छत्र राजा की तरह घर में वह अपने मन की ज़िन्दगी बिताना चाहता है। यह अभिमान पुरुष के मन का भोजन है। इसकी पूर्ति भी होनी ही चाहिए।

यह अभिमान तभी पूरा होता है जब पुरुष को यह अनुभव हो कि उसके पुरुषार्थ से ही घर का काम-काज चल रहा है। अपने भाग से दायित्व को पूरा कर सकने का सन्तोष उसे अवश्य होना चाहिए। स्त्री को भी अपने भाग को पूरी तरह निभा सकने का सन्तोष आवश्यक है। किन्तु बाहर के कामों में लगकर स्त्री भी अपने गृहजीवन के उत्तरदायित्व को नहीं निभा सकती।

दोनों का ही मन असन्तुष्ट रहने लगा। दोनों अपने को अपराधी मानने लगे; दिलों का सम्बन्ध टूट गया, बात-बात में तानेबाज़ी होने लगी; जीवन में अजीब रूखापन छा गया; एक थकान-सी भर गई नस-नस में। दोनों ही थके रहते थे।

तब दोनों ने अपने आसपास के साथियों में आसरे की तलाश की। नरेश की मित्रता हो गई उसके ही कालेज में काम करने वाली एक स्त्री 'मीरा' से, और 'सावी' को सहारा मिला रेडियो स्टेशन के डायरेक्टर का।

'सावी' एक दिन ज़रा देर से आई। घर में आकर देखा कि मीरा सितार लेकर बजा रही थी। नरेश कुछ गुनगुना रहा था। दोनों खोए-से बैठे थे। सावी को देखकर दोनों चौंक गए।

"मुझे आपके रंग में भंग करने का दुःख है।" कहकर सावी ने व्यंग्य किया।

नरेश ने भी उत्तर दिया—"क्यों ? क्या डायरेक्टर साहब के साथ कुछ देर और बैठने की इच्छा थी ?"

बात बढ़ गई। नौबत यहां तक आ गई कि नरेश ने सावी को छोड़ दिया और 'मीरा' से विवाह कर लिया। शादी के बाद 'मीरा' ने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया। उसके इस त्याग ने नरेश को और भी प्रभावित किया।

यह उदाहरण अकेला नहीं है। शायद ही कोई पत्नी स्वयं कमाकर प्रसन्न हुई हो। अच्छा यही है कि ऊंचे रहन-सहन का लालच छोड़कर पत्नी पति की कमाई में ही सन्तोष करे अन्यथा उसका धनोपार्जन घर के विनाश का कारण बन जाता है।

सच तो यह है कि पत्नी के घरलू काम ही इतने अधिक होते हैं और उनमें इतनी तन्मयता की आवश्यकता होती है कि उसे घर के बाहर जाने का अवकाश ही नहीं होता। कामों की अधिकता न हो तब भी घर में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है।

यदि वह किसी बाहर के काम से धनोपार्जन करना चाहती है तो उसे अपना पूरा ध्यान उस काम में देना होगा। व्यावसायिक जीवन भी सफलता के लिए पूरी शक्ति की अपेक्षा रखता है। आधे दिल से तो छोटे से छोटा काम भी पूरा नहीं होता। पत्नी के लिए यह सम्भव ही नहीं है कि वह गृह-जीवन के दायित्वों को निभाते हुए बाहर के काम कर सके। यदि कोई पत्नी यह उद्योग करती है तो वह दोनों को अधूरा करती है। उसे कोई भी काम पूरा करने का सन्तोष नहीं मिलता।

आफिस में चार-पांच घण्टे बैठकर टाइप कर देना या टेलीफोन की तारें जोड़ देना आदि कुछ काम ऐसे अवश्य हैं जो शिशु-हीन माताएं नियत समय पर कर सकती हैं क्योंकि इन कामों में तन्मयता की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु, किसी भी दायित्व-पूर्ण रचनात्मक कार्य में पूरी तन्मयता की आवश्यकता होती है। ऐसे कामों की सफलता में ही मानसिक सन्तोष मिलता है। इन कामों में लगी स्त्रियों की संख्या शायद अंगुलियों पर गिनी जाने योग्य होगी।

मेरा तो विश्वास है कि किसी भी उद्योग-धन्धे में कोई भी लड़की उसीको अपना जीवन-व्यवसाय बनाकर नहीं जुटती। विवाह से पूर्व योग्य वर मिलने तक का समय बिताने के लिए ही वह उसमें लगती है। मैं अपने देश की ही यह बात नहीं कहता, अमेरिका या यूरोप में भी यही होता है। विवाहित जीवन ही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ जीवन-व्यवसाय होता है। मैं ऐसी सैकड़ों लड़कियों के जीवन से परिचित हूं जो केवल समय-यापन के लिए उद्योग-धन्धों में लगी हैं। वे उस दिन की ही प्रतीक्षा में हैं जब कोई योग्य आदमी उनसे शादी करके घर में बसाएगा। अपने काम से उन्हें विशेष प्रेम नहीं है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पत्नी को घर के बाहर के कामों में दिलचस्पी ही नहीं लेनी चाहिए, अथवा घरेलू कामों के अलावा किसी काम में हाथ नहीं डालना चाहिए। घर के दायित्व को निभाते हुए यदि वह अपनी रुचि के किसी काम को घर बैठकर ही कर सकती है तो अवश्य करे। पति के काम में सहायता कर सकती है तो अच्छा है।

तुम भी अपने पति के काम में सहायता करो। उनकी फाइलों को तरकीब से जोड़कर या उनके दस्तावेज़ों को टाइप करके उनका हाथ बंटा सकती हो। दूसरों के दफ्तर में जाकर यही काम करने से घर में ही क्यों न करो।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पत्र | १४

कुसुमधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमः।

स्त्रियां स्वभाव से ही फूलों के समान कोमल होती हैं।

प्रजनार्थं स्त्रियः स्रष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।

पुरुष और स्त्री के विवाहित जीवन का उद्देश्य प्रजोत्पादन ही है।

पाशविक विषय-वासना के अर्थ किया हुआ विवाह अपवित्र सम्बन्ध है।

—गांधीजी

प्रिय कमला,

तुमने अपने पिछले पत्र में लिखा है—"मैंने कहीं पढ़ा है, X 'स्त्रीणामष्टगुणः कामः'—स्त्री में पुरुषों की अपेक्षा आठ गुणा कामेच्छा अधिक होती है—स्त्रियों का जीवन ही उनके काम-सम्बन्धी जीवन की सफलता पर निर्भर है। मुझे तो ऐसा अनुभव नहीं होता। मेरा अनुमान है, पुरुषों ने यह लिखकर स्त्रियों पर व्यर्थ ही लांछन लगाया है। मुझे तो पुरुष में ही अधिक कामातुरता प्रतीत होती है। आप खूब सोच-समझकर इसका उत्तर दीजिए। कहीं मैं अन्य स्त्रियों से पृथक् तो नहीं हूं। सम्भव है मेरी ही प्रकृति असाधारण हो।"

डरो मत। तुम असाधारण नहीं हो। तुम्हारी प्रकृति भी अन्य स्त्रियों के समान है। 'स्त्रीणामष्टगुणः कामः' का अर्थ यदि

यह है कि स्त्रियों में रति-सुख पाने की इच्छा आठ गुणा होती है, तब मैं इस बात से सर्वथा असहमत हूं। मेरी निश्चित धारणा है कि सौ में से अस्सी प्रतिशत विवाहित स्त्रियां ऐसी होती हैं जो रति-सुख को विशेष महत्त्व नहीं देतीं। और उन अस्सी में से भी पचास प्रतिशत ज़रूर ऐसी हैं जो रति-क्रिया में सर्वथा निष्क्रिय रहती हैं—उदासीन रहती हैं। और कुछ तो ऐसी भी हैं जो इससे अरुचि भी रखती हैं।

यह अवस्था केवल हमारे देश की स्त्रियों की ही नहीं है। हमारे देश में लड़कियों पर माता-पिता का कठोर अनुशासन रहने तथा स्त्री को पुरुष से हीन समझने के कारण यह धारणा और भी प्रबल हो गई है कि स्त्रियों को रति-सुख से सर्वथा उदासीन रहना चाहिए। किन्तु अन्य देशों की स्त्रियां भी इस धारणा की शिकार हुई हैं।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व इंगलैंड के प्रमुख चिकित्सक डाक्टर एक्शन (Doctor Action) ने, जो उस समय स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी मनोविज्ञान का भी विशेषज्ञ माना जाता था, यह लिखा था—"The majority of women, happily for society, are not much troubled with sexual feelings." अर्थात् "सौभाग्य की बात है कि हमारे देश की बहुसंख्यक स्त्रियां ऐसी हैं जिन्हें कामेच्छा कभी सताती ही नहीं।"

आधी शताब्दी पूर्व सभी विचारकों का यही मत था। स्त्रियों के मन में रति-सुख की इच्छा का जागरित होना पाप समझा जाता था। उनका धर्म यही समझा जाता था कि वे केवल पति की कामेच्छा को शान्त करने के लिए आत्मार्पण करें। अब उन विचारों में परिवर्तन आ गया है। किन्तु, यह परिवर्तन केवल

विचारों में है। क्रिया में अभी तक वही धारणा काम कर रही है। हमारे देश की निरक्षरता ने इसे और भी विकृत रूप दे दिया है। अशिक्षित समाज में आज भी विवाह के उपरान्त पत्नी को केवल समर्पित होने का अधिकार है। इच्छा करने की स्वतन्त्रता केवल पति को है। परिणाम यह होता है कि पुरुष की निष्ठुर प्रवृत्तियां स्त्री को बिलकुल उदासीन और निष्क्रिय बना देती हैं। पति स्त्री की भावनाओं को जब बार-बार कुचलता है और आक्रान्त करता है, तब स्त्री में रतिकार्य के प्रति विरक्ति के भाव आते हैं।

कोक के 'रतिरहस्य' में यही भाव प्रकट किए गए हैं—

"सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्या चित्तमविदन्ता।
भयं त्रासं समुद्वेगं सदयो द्वेषं च गच्छति॥"

अर्थात् पुरुष के निष्ठुर व्यवहार से कन्या का मन भय, उद्वेग और विरक्ति के भावों से भर जाता है। वह पुरुष-द्वेषिणी भी हो जाती है। एक अंग्रेज लेखक Wills ने इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए लिखा है—

"So brutal are men that they often drive their chaste and ignorant young wives from them forever by raping them on their bridal night."

अर्थात् पुरुष ऐसे पशु होते हैं कि वे पहली रात की भेंट में ही पवित्र पत्नी से बलपूर्वक भोग करके उसके मन में सदा के लिए 'भोग' के प्रति विरक्ति पैदा कर देते हैं।

यह विरक्ति आज की पत्नियों की बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसका उपाय तो केवल यह है कि विरक्ति के कारणों को दूर किया जाए। पति अपनी पत्नियों की भावनाओं का मान

करे, कोमल उपचारों से उसकी स्वीकृति प्राप्त करे। उनकी चर्चा प्रसंग आने पर करूंगा। यहां तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देते हुए यही बात दोहराता हूं कि 'स्त्री में रति-सुख की इच्छा पुरुष से आठ गुणा अधिक होती है' यह बात सर्वथा झूठ है।

स्त्रियों की कामेच्छा को अतिरंजित करके पश्चिम के आधुनिक विचारक भी बहुत-सी असम्बद्ध बातें कह गए हैं। फ्रायड मनोविज्ञान का बहुत बड़ा विचारक हुआ है। उसने स्त्रियों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अन्त में लिखा है—

"That is all I had to say to you about the Psychology of women. You must not forget however we have only described women as far as their natures are determined by their sexual function. The influence of this function is of course very far reaching, but we must remember that an individual woman may be a human being apart from this."

सारांश यह है कि "मैंने अभी तक स्त्रियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए उन्हीं अवस्थाओं का ज़िक्र किया है जहां उनकी प्रकृति का निरूपण उनके प्रजनन-कार्य से होता है। इस कार्य का प्रभाव बहुत गहरा है—किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई स्त्री इस प्रभाव से रहित···अपवाद रूप भी हो सकती है।"

मेरा विश्वास है कि फ्रायड ने स्त्री की प्रकृति के निरूपण में प्रजनन-कार्य को अनावश्यक महत्त्व दिया है। और इसके प्रभाव से रहित स्त्रियों को 'अपवाद' कहकर भी भूल की है।

उनका कहना है कि इसका प्रभाव बहुत गहरा होता है। 'प्रजनन-कार्य' का अर्थ यदि केवल संयोग के क्षणिक कार्य से है तो मैं उनके कथन से सर्वथा असहमत हूं। स्त्री-प्रकृति के निरूपण में उस कार्य का बहुत कम महत्त्व है।

फ्रायड के विचार से सहमत होने का अर्थ यह होगा कि विवाहित पति-पत्नी का सुख केवल रति-सुख पर आश्रित है। और यह भी कि रति-कार्य की परितृप्ति से ही पति-पत्नी की मानसिक अनुकूलता बनती है।

पश्चिम के अन्य कई विचारक भी यह मानते हैं। उनका कथन है "The root of love is sex" अर्थात् "यौन-आकर्षण ही प्रेम का मूल है।" भारतीय दृष्टिकोण इसके सर्वथा विपरीत है। हमारा विश्वास है कि मानसिक अनुकूलता का ही विवाह में अधिक महत्त्व है। उसके साथ काम-सम्बन्धी जीवन में स्वयं अनुकूलता आ जाएगी। कुछ नये वैज्ञानिक भी इसी मत के हो गए हैं। उनके सामने ऐसे बहुत उदाहरण हैं जिनसे स्पष्ट है कि स्त्री के मन में पुरुष के प्रति प्रेम होगा तभी वह रति-कर्म में सुख अनुभव करती है, अन्यथा नहीं। तुम चाहो तो ऐसे सैकड़ों उदाहरण 'Psychology of Sex' पुस्तक में पढ़ सकती हो।

इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि स्त्री-हृदय भोग नहीं, प्रेम चाहता है। हमारे स्मृतिकारों ने जब यह लिखा था—"स्त्रीणामष्टगुण: कामः" तब भी उनका अभिप्राय 'काम' शब्द से भोग-कामना या विलास से नहीं होगा—अपितु प्रेम की कामना से होगा। आज भी बहुत लोग हैं जो विवाहित प्रेम को केवल भोग या विलास मानते हैं। उन्होंने ही उपर्युक्त वाक्य का अनर्थ कर डाला है। "स्त्री में पुरुष

की अपेक्षा आठ गुणा अधिक प्रेम है," यह बात मेरे विचार से सच है।

उसके जीवन में प्रेम की महिमा निर्विवाद है। उसका विकास ही प्रेम में होता है। जीवित रहने के लिए आवश्यक भोजन की प्राप्ति या अन्य अल्पतम प्रसाधनों की पूर्ति होने के बाद पुरुष का मन लोकेषणा की ओर प्रवृत्त हो जाता है, किन्तु स्त्री का मन केवल प्रेम की ओर झुकता है। प्रेम की प्रवृत्ति दोनों में है किन्तु स्त्री में उसकी प्रधानता है। प्रकृति ने स्त्री के जीवन का कार्यक्रम ही ऐसा बनाया है कि वह प्रेम की परिधि से बाहर नहीं जा सकती। अभी वह अपनी आयु का एक-चौथाई हिस्सा भी नहीं गुज़ारती कि उसकी गोद अपनी सन्तान से भर जाती है। माता बनकर उसे सारी उम्र सन्तान का भरण-पोषण करना पड़ता है।

यह मातृत्व ही उसके स्त्रीत्व का चरम लक्ष्य है। इसकी रहस्यमयी पुकार ही उसमें पुरुष-प्रेम का बीज बोती है। मानसिक विकारों से पराभूत होकर नहीं बल्कि निर्माण की इच्छा से प्रेरित होकर ही वह पुरुष-प्रेम की उपासना करती है; पुरुष को देवता मानती है और आत्मा की सम्पूर्ण भावनाओं के साथ समर्पित होती है।

इस समर्पण में वासना की मलिन छाया देखने वाले अपने दृष्टिदोष को दूर करने का प्रयत्न करें तो अच्छा है।

विवाह को भोग का आज्ञापत्र कहना विवाह की सम्पूर्ण कल्पना को विषाक्त बनाना है। पति-पत्नी के बीच केवल दैहिक भोग की इच्छा उसी तरह दूषित है जिस तरह अन्य स्त्री-पुरुष के बीच भोगेच्छा। जब दो आत्माएं मिलकर एकात्म होती हैं तब

भोग की इच्छा स्वयं निर्मूल हो जाती है। यह बात मैं भावुकता-वश नहीं कह रहा। मनोवैज्ञानिक सत्य भी यही है। भोग में शोषण की कामना का अंश है। आत्मिक मिलन में शोषण के विपरीत केवल प्रतिदान है। दोनों परस्पर-विरोधी भावनाएं हैं।

भोग वहीं होता है जहां भोक्ता और भोग्य में विषमता हो। कोई भी मनुष्य अपना भोग नहीं करता। अपने से प्रेम तो सबको होता है किन्तु भोग की भावना नहीं होती। जो वस्तु अपनी आत्मा के निकट आती जाएगी उसके प्रति भोग की इच्छा कम होती जाएगी, क्योंकि वह निकट आते हुए अपनी ही आत्मा का अंग बन जाएगी।

जर्मनी के जगत्-विख्यात विचारक फ्रिट्ज़ ने इस सम्वन्ध में बहुत विचारपूर्ण बात कही है—

"The experience of sex with the self as object is weaker and less electrifying. Not that we love ourse lves less, but we do not experience ourselves as sexualy differentiated."

अर्थात्—मनुष्य के लिए आत्मरति का अनुभव विशेष उत्तेजक नहीं होता। इसका कारण यह नहीं है कि हमें अपने से अनुराग नहीं—बल्कि यह है कि हमें अपने ही व्यक्तित्व में यौन-आकर्षण योग्य विभिन्नता का अनुभव नहीं होता।

यौन-आकर्षण के लिए पर्याप्त विभिन्नता की अपेक्षा है। भोगेच्छा भी परकीय वस्तु की ही तीव्रतम होती है। वह वस्तु जितनी निकट आ जाती है—भोग का आकर्षण उसके प्रति कम होता जाता है। जब वह भावना इतनी निकट आ जाए कि दूरी का अनुभव ही न रहे—तब भोग का आकर्षण रह ही नहीं सकता।

पति-पत्नी के रूप में भी स्त्री-पुरुष की एकात्मा हो जाती है। अतः उनका परस्पर वासनाग्रस्त होना दूषित ही नहीं अप्राकृत भी है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि पति-पत्नी का शरीर-संग होना ही बुरा है। दोनों जीवन-संगी हैं। यह कैसे संभव है कि उनका शरीर-संग बुरा है। शरीर और आत्मा से दोनों एक-दूसरे के हो चुके हैं। इस निकटता को बनाए रखना उनके जीवन का अंग हो गया है। इस निकटता को कोई दूषित नहीं कह सकता।

पुरुषों की भावना प्रायः यह रहती है कि वे भोग के लिए निकट आते हैं, प्रेम की प्रेरणा से नहीं। स्त्री प्रेम की निकटता चाहती है। उसे प्रेमपूर्ण अन्य व्यवहारों का सुख भी उतना ही तृप्तिजनक है जितना रति-सुख। उसके प्रेम में एकरसता है—तारतम्य है। उसके स्वभाव में भावनाएं ही प्रधान कार्य करती हैं। वह सम्पूर्ण भावनाओं से पुरुष को प्रेम करती है। पुरुष को चाहिए कि वह उसकी कोमल भावनाओं का मान करते हुए ही उसका प्रेम प्राप्त करे।

हमारी प्राचीन पुस्तकों में लिखा है: "कुसुमधर्माणो हि योषितः"—स्त्रियां फूलों के समान होती हैं। उन्हें अपने निष्ठुर पौरुष से नहीं बल्कि मृदु व्यवहार से प्रसन्न करना चाहिए। स्त्रियां पुरुषों में पौरुष और शौर्य की पूजा करती हैं। किन्तु शौर्य का प्रयोग उनकी सुरक्षा में होना चाहिए न कि उन्हींके पराभव में।

तुम्हारा हितचिंतक
....

परस्पर-अनुरूपता

पत्र | १५

- आत्मिक मिलन;
- प्रेम पहला पड़ाव नहीं, अन्तिम मंज़िल;
- गृहस्थ में आत्मपरता क्यों ?
- संयम से सन्तुलित मन वाले आदर्श पति-पत्नी।

प्रिय कमला,

विवाहित जीवन की सफलता योग्य जीवन-साथी बनाने की योग्यता पर निर्भर करती है; साथी कैसा है इसपर नहीं, बल्कि, हम कैसे हैं, इस प्रश्न के उत्तर पर। लोग प्रायः सारी शक्ति चुनाव पर लगा देते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि विवाह दो साथियों का सम्बन्ध है, जिनमें से एक वे स्वयं हैं।

कुछ ऐसे हैं जो सारी बात भाग्य पर छोड़ देते हैं। ये दोनों ही दृष्टिकोण दोषपूर्ण हैं। विवाह दोनों के प्रयत्न से बनता है। उसे सफल-असफल बनाने में मनुष्य का अपना ही हाथ है। विवाह की गाड़ी दोनों पहियों पर चलती है। दोनों को एकसाथ, एक-सी तन्मयता से उसे सफलता की ओर आगे बढ़ाना है। दोनों परस्परापेक्षी हैं। पत्नी का साथ होने से ही पति का पतित्व है और पति का साथ होने से पत्नी का पत्नीत्व।

यह बात सुनने में बड़ी मामूली लगती है लेकिन ऐसी मामूली सचाइयों की उपेक्षा ही जीवन को जटिल बना देती है। इस सत्य के कारण ही यह सच है कि अच्छी पत्नी बनने के लिए

केवल अच्छी स्त्री होना पर्याप्त नहीं है जिसे आम लोग किसीके लिए भी 'आदर्श पत्नी' बनने योग्य बताते हैं। अच्छी पत्नी वह है जो अपने पति के लिए अच्छी है। इसी तरह अच्छा पति वहो नहीं बनेगा जो विवाह से पूर्व लड़कियों में बहुत लोकप्रिय होगा, बल्कि वह बनेगा जो अपनी—केवल अपनी पत्नी के लिए अच्छा होगा।

स्थायी और सुखी विवाहों का आधार पति-पत्नी की आदर्श अनुरूपता पर है। एक पति के लिए जो पत्नी अनुरूपता की साकार प्रतिमा अमृतबेल है वही दूसरे के लिए विषवल्लरी बन जाती है। इस अनुरूपता-प्रतिरूपता के सामंजस्य में दोनों की काम-सम्बन्धी अनुरूपता बहुत कम भाग लेती है। उसका भाग अवश्य है—किन्तु बहुत कम। कई बार तो वह इतना कम होता है कि उनके विवाहित जीवन की सफलता काम-सम्बन्ध के बिना भी सम्पन्न हो जाती है।

मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूं जो पिछले बीस वर्षों से कभी सहवास न करते हुए भी सफल विवाहित जीवन बिता रहे हैं। उनका पारिवारिक जीवन सुखी है। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से प्रसन्न हैं; दोनों के चेहरों पर मुस्कान है; एक-दूसरे के सुख-दुःख को बिल्कुल अपना ही सुख-दुःख मानते हैं; मन में कभी मलिनता नहीं आती; एक-दूसरे का आदर करते हैं; काम-सम्बन्धी आकर्षण का सर्वथा परित्याग करके भी दोनों को एक-दूसरे के बिना दुनिया सूनी लगती है। इस आत्मिक मिलन में उन्हें पहले से भी अधिक उल्लास का अनुभव होता है। वे आदर्श जीवन-साथी हैं।

यदि पत्नी अपने पति को अपने व्यवहार से आश्वस्त करा

सके कि उसका पति उसकी दृष्टि में आदर्श पति है और पति भी अपनी पत्नी को आदर्श पत्नी होने की अनुभूति करा सके तो समझना चाहिए कि दोनों सुखी और सफल जीवन-साथी हैं। उनका वह सुख आयु के साथ बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं।

यह उत्तरोत्तर वृद्धिशील, उम्र के साथ बढ़ने वाला प्रेम ही सच्चा प्रेम है। प्रेम नाम से जिन रोमांचकारी भावनाओं का आम तौर पर स्मरण किया जाता है वे विवाहित जीवन के प्रथम कुछ पहरों या दिनों में ही निःसार हो जाती हैं। प्रेमाधीन हो जाना कठिन नहीं है। इसमें कुछ भी यत्न नहीं करना पड़ता। यह घटना स्वतः हो जाती है। किन्तु प्रेम के दीपक को जीवन के आंधी-तूफानों में भी सदा जलाए रखना, उसकी ज्योति को मन्द नहीं होने देना— यह काम है जिसे करने के लिए कुछ योग्यता अपेक्षित है। तुम्हें भी योग्य बनना है।

अतः प्रेम को विवाहित जीवन का सोपान न समझकर तथ्य मानना, पहला पड़ाव न मानकर आखिरी मंज़िल मानना। यह दृष्टिकोण तुम्हें अपने विवाहित प्रेम को अमर बनाने के लिए आजीवन यत्नशील रखेगा। विवाह तुम्हारी जीवन-साधना का ही एक काम है। उसे अपनी साधना से जैसा भला-बुरा बनाओगी वह बन जाएगा। हर समय तुम्हें ऐसी परिस्थितियां बनानी हैं जिनमें प्रेम को विकास मिले, अन्यथा उसका विकास असंभव हो जाएगा। मानवीय जीवन 'जैसा था वैसा' कभी नहीं रहता। प्रगति या अवनति—दोनों में से एक को चुनना पड़ता है। जिसका विकास नहीं होगा वह मुरझा जाएगा। विवाह पर भी यही सत्य लागू होता है। जो विवाह प्रेम में विकसित नहीं होते वे उपेक्षा और घृणा की घाटी में गिरकर बरबाद हो जाते हैं।

इन बरबाद होने वालों में अधिकतर ऐसे भी होते हैं जो विवाह का अर्थ नहीं जानते। उनकी भावनाओं में परिपक्वता नहीं होती। अपने काम-संबन्धी कौतूहलों को शांत करने के लिए उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ ली होती हैं। किन्तु, विवाह की ज़िम्मेदारियों को पूरा करने या साथी के प्रेम को आमरण निभाने के लिए जिस भावनात्मक परिपक्वता (Emotional maturity) की आवश्यकता है उससे वे सर्वथा रिक्त होते हैं। शारीरिक दृष्टि से ही विवाह-योग्य होना पर्याप्त नहीं है। मानसिक अवस्था का भी इस कठिन परीक्षा के योग्य होना आवश्यक है। हमारे युवक-युवतियों में शायद एक प्रतिशत भी इसके लिए तैयार नहीं होते। उनमें अभी बचपन की ही मूर्खताएं भरी होती हैं—जब उनका गठबन्धन कर दिया जाता है।

बचपने की कुछ आदतें ऐसी हैं जो विवाह को पथरीले रास्ते पर डाल देती हैं। एक आदत का उदाहरण देता हूं। बच्चे के सामने बीस खिलौने रखे हैं। उससे कहा गया कि वह और सब खिलौनों से खेले, लेकिन अलमारी के ऊपर पड़ी डिबिया को न छुए। बच्चा और सबको छोड़कर उस निषिद्ध खिलौने को पकड़ने की ही कोशिश करेगा। उसकी यह आदत उसे विवाह में भी साधारणतया निरोधित आनन्दों के उपभोग में व्यस्त कर देगी।

बच्चों की आदत और है। बच्चे अपने हाथ का सुन्दर, बढ़िया खिलौना छोड़कर भी दूसरे के हाथ का घटिया खिलौना पाने को तरसेंगे, रोएंगे, चिल्लाएंगे। कच्ची भावनाओं के विवाहित युवक-युवती भी विवाहित जीवन में ऐसी ही चेष्टाएं शुरू कर देते हैं। अपने साथी का ध्यान छोड़कर वे पर-स्त्री या पर-

पुरुष को हृदय में बसा लेते हैं। अपना साथी उन्हें बाकी सबसे मामूली लगने लगता है। उसके प्रति उनमें गहरी उपेक्षा बन जाती है।

तुमने देखा होगा कि बच्चों की सब चेष्टाएं अपने ही स्वार्थ से होती हैं। आत्म-तुष्टि ही उनकी प्रमुख प्रेरणा है। सामाजिक और बौद्धिक विवेक के विकास के साथ यह आत्मपरता कम होती जाती है। किन्तु इस विकास के पहले ही जो विवाह करते हैं, या विवाह से पूर्व जिनका विवेक परिपक्व नहीं होता, उनका विवाहित जीवन भी इस आत्मपरता से भर जाता है। अपने ही संतोष के लिए वे स्त्री का उपभोग शुरू कर देते हैं; या स्त्रियां भी आत्म-विलास के लिए पुरुष के धन का अपव्यय शुरू कर देती हैं। ऐसे आत्मरत व्यक्ति ही स्त्री की अनिच्छा होते भी भोग में प्रवृत्त हो जाते हैं; अपनी निर्वाह-शक्ति को बिना देखे बच्चों की फौज जमा कर लेते हैं। उनसे प्रश्न किया जाय या इस अनाचार पर निरोध लगाने की उन्हें प्रेरणा की जाय तो वे कहते हैं,—"प्राकृत इच्छाओं का दमन ईश्वर के राज्य में हस्तक्षेप करना है।"

दूसरी ओर कुछ ऐसे परिपक्व विवेक वाले युवक भी हैं जो अपनी प्राकृत क्षुधा को इतना महत्त्व नहीं देते। उनकी दृष्टि में उनके साथी का सुख इससे अधिक महत्त्व रखता है। वे संयम से चलते हैं। प्राकृत भूख को मिटाने की मूल प्रवृत्ति के साथ उनकी परमार्थवृत्ति भी विकसित हो चुकी होती है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में भी बड़ी असंगति है। वे आवश्यक रूप से सदा संगत नहीं होतीं। विवेक द्वारा उनका संयम किया जाता है और अच्छे मार्ग में प्रवृत्त किया जाता है। लेकिन यह सब तो वही समझ सकता है जो भावात्मक परिपक्वता पाने के बाद विवाह करता

है या जो पहले विवाह के योग्य बनकर विवाह करता है।

अतः विवाह से पूर्व युवक-युवती के मन में परस्पर आकर्षण के प्रति स्वस्थ भावना जागरित होनी चाहिए। आवश्यक है कि उनकी बुद्धि के इस प्राकृत खिचाव का अर्थ समझने योग्य हो जाने के बाद ही उनका विवाह हो। यह स्वस्थ भावना ही विवाह को सुखी और सफल बनाती है। इस स्वस्थता से युक्त पति-पत्नी का जीवन बड़ा सन्तुलित रहता है; मन की भावनाएं संयत रहती हैं। वे वासनाओं की प्राकृत प्रेरणाओं के दास नहीं होते।

विवेक से परिपक्व और संयम से सन्तुलित मन वाले पति-पत्नी ही आदर्श पति-पत्नी बन सकते हैं। उन्हींका प्रेम जीवन-भर निभता है। इस सम्बन्ध में मैं महात्मा गांधी के इस कथन से सहमत हूं कि—

"सहवास न तो प्रेम को बढ़ाता है और न उसे बनाए रखने या उसके पोषण-वर्द्धन के लिए किसी भी तरह अनिवार्य है। संयम से ही प्रेम का बन्धन दृढ़ होता है।"

महात्मा गांधी की भी यही धारणा थी कि दोनों के शरीर-संग की अपेक्षा दोनों का मृदुतापूर्ण व्यवहार और परस्पर स्नेह ही विवाहित प्रेम का आधार है। महात्मा गांधी ने १९०६ में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। बीस वर्ष तक संयम का जीवन बिताने के बाद आपने अपना अनुभव इन शब्दों में लिखा है—

"व्रत लेने के समय तक मैंने अपनी धर्मपत्नी की राय नहीं ली थी। व्रत लेते समय ली। उसकी ओर से विरोध नहीं हुआ··· उस समय अपनी पत्नी के साथ भी विकारों से अलिप्त रहना कुछ विचित्र लगता था। किन्तु आज बीस वर्ष बाद उस व्रत को याद करके भी आनन्द मिलता है। जो स्वतन्त्रता और आनन्द

हमारे विवाहित जीवन में आज है वह १९०६ से पहले कभी मिला हो—यह मुझे याद नहीं आता···मेरा अनुभव तो यह है कि पति-पत्नी अगर स्वेच्छा से संयम करें तो अत्यधिक सुख पाते हैं।"

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति क्या चाहता है ? (१)

पत्र | १६

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं,
वाक्पारुष्याच्चोपकारोऽपि नष्टः।

मधुर वचन से बढ़कर संसार में कुछ प्रिय नहीं है। कटु भाषण के साथ किया हुआ उपकार भी अप्रिय हो जाता है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् प्रियं हि वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

प्रिय वचनों से सभी प्रसन्न होते हैं। इसलिए प्रिय ही बोलना चाहिए। वचनों में कृपणता कैसी ?

प्रिय कमला,

इस पत्र में मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूं कि "हमारे पुरुष स्त्रियों में कौन-से गुण चाहते हैं ?" यह जानने के बाद तुम्हें अपने पति को समझने और सन्तुष्ट करने में अवश्य सहायता मिलेगी।

'चाह' बड़े धोखे की चीज़ है। आवश्यकता नहीं कि पुरुष की चाह केवल गुणों की ओर हो। कई बार स्त्री के किसी भी भाग की विशेष बनावट पर ही पुरुष की चाह केन्द्रित हो जाती है। वह चाह पिछले संस्कारों या स्मृतियों से बनती है। उसका विश्लेषण कठिन होता है। पर वह निष्कारण नहीं होती। एक मनुष्य को स्त्री की गर्दन की एक विशेष प्रकार की बनावट बहुत

ही प्रिय हो गई थी। उसके मन में उसी तरह की गरदन वाली स्त्री की चाह पैदा हो गई। सम्भव है उसे यह चाह किसी काव्य की नायिका के नखशिख वर्णन से मिली हो। इस चाह का पूरा होना कठिन काम था। कई कुलीन लड़कियों के विवाह-प्रस्ताव उसकी विचित्र 'चाह' को अतृप्त रखने के कारण वापस चले गए। आखिर बरसों बाद उसे एक सभा में वैसी ही गरदन वाली लड़की दिखाई दी। उसे देखते ही उसका रोम-रोम खिल उठा। जैसे कोई मेघ अचानक घटाटोप में बदल जाए—ऐसे ही उसकी चाह उन्माद बनकर उसके जीवन पर छा गई। ऐसी चाह को अंग्रेज़ी में infatuation (विशेष प्रकार का उन्माद) कहते हैं।

यह उन्माद बहुत असाधारण नहीं है। हमारे युवक इसी तरह के उन्माद को प्रेम का रूप दे देते हैं। यह उन्माद जिस वेग से उमड़ता है उसी वेग से उतरता भी है।

यहां पुरुषों की चाह से मेरा अभिप्राय ऐसे उन्माद से नहीं है बल्कि उन गुणों से है जिनकी आंकाक्षा प्रत्येक स्वस्थ और साधारण पति अपनी पत्नी से करते हैं।

ये गुण प्रायः वही हैं जो पुरुष में अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में होते हैं। तभी स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे का पूरक कहा जाता है। जो प्रकृति पुरुष ने पाई है वही स्त्री ने नहीं पाई। दोनों की प्रकृति में बड़ा भेद होता है। यह भेद इतना मनुष्यकृत नहीं जितना ईश्वरकृत है। मैं यह नहीं मानता कि वे सब भेद केवल मनुष्यकृत भेद हैं या यह कि ईश्वर की दृष्टि में दोनों समान हैं। सच यह है कि दोनों के शारीरिक गठन में जितना अन्तर है उतना ही मानसिक गठन में भी है।

हम प्रायः उसीकी कामना करते हैं जो हमें प्राप्त नहीं है।

अप्राप्त वस्तु की ही इच्छा होती है। पुरुष और स्त्री की कामना में भी यही नियम है। पुरुष अपनी प्रकृति के विरोधी गुणों की कामना करता है। पुरुष में कठोरता होती है। इसलिए वह स्त्री में कोमलता चाहता है। पुरुष में गति है, स्त्री में वह विराम चाहता है। पुरुष में युक्ति है, स्त्री में वह भावुकता की कामना करता है। पुरुष में व्यावहारिक स्पष्टता है इसलिए स्त्री में वह रहस्यात्मक प्रवृत्तियां चाहता है। पुरुष को आजीविका कमाने के लिए भौतिकता की सतह पर रहना पड़ता है इसीलिए वह स्त्री में आध्यात्मिकता की उड़ान चाहता है। पुरुष सब काम विविध और विभक्त करके करता है, अतः स्त्री में एकरसता और अविभक्तता की कामना करता है। पुरुष में इच्छाशक्ति है, धैर्य नहीं; अध्यवसाय है, सहिष्णुता नहीं। जो कुछ उसमें नहीं है वह स्त्री में उसकी पूर्ति चाहता है। उसीको पाने के लिए तड़पता है।

यदि यह कह दिया जाए कि वह स्त्री के व्यक्तित्व में मिलकर पूर्णता चाहता है तो भी ठीक होगा। प्रकृति ने दोनों में परस्पर-पूरक गुण दिए हैं। यह विभेद ही दोनों की कामनाओं का रहस्य है। दो विरोधी विद्युत् शक्तियां मिलकर नया निर्माण करना चाहती हैं। निर्माण का यह बड़ा उपयोगी सिद्धान्त है।

इसलिए पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक होने में जितना सफल होंगे, वह मिलन उतना ही पूर्ण होगा। एक बात स्मरण रखनी चाहिए। कोई भी पुरुष पूर्ण पुरुष नहीं है और कोई भी स्त्री स्त्रीत्व के आदर्श गुणों से सम्पन्न नहीं है। प्रत्येक पुरुष में नारीत्व का अंश और नारी में पुरुषत्व का अंश अवश्य होता है। पुरुष में भी मृदुता, धैर्य, भावना, एकरसता और आध्यात्मिकता होती है। ऐसे ही स्त्री में भी कठोरता, गति, तर्क और भौतिकता होती

है। इतना अवश्य कह सकता हूं कि पुरुष की प्रेरणा पौरुष से ही होगी और स्त्री की प्रेरणा का स्रोत मृदुता ही रहेगा।

मृदुता या कोमलता स्त्रियों का प्राकृतिक गुण है। बचपन से ही लड़कियों का शरीर कोमल होता है। उनके अवयवों में गोलाई होती है। उनकी त्वचा भी लड़कों की अपेक्षा नरम होती है। ईश्वर उन्हें फूल की पंखुड़ियों से बनाता है। जिन हाथों में कोमल शिशु की पालना होती है वह कठोर नहीं हो सकते। जिस आंचल को नवजात बालक की जन्म-शय्या बनना है उसमें फूलों की कोमलता देना प्रकृति की दूरदर्शिता है। शरीर के साथ स्त्रियों का मन कोमल कल्पनाओं से ही भरा होता है। उसमें संसार-विजय की महत्त्वाकांक्षा नहीं होती, अपनी गोद का बालक ही उसका संसार होता है। अपने हृदय के टुकड़ों से वह उसे पालती है। पुरुष जब सारी दुनिया के विध्वंस के सपने लेता रहता है, तब स्त्री की ममता अपने अंचल के शिशु को अपने स्तन का दूध पिला-कर नये निर्माण में व्यस्त होती है।

नारी के इस देवत्व के आगे पुरुष का सिर झुक जाता है। पति भी पत्नी की इस कोमलता को प्रेम और पूजा के भाव से देखता है। यह शरीर के अवयवों तक सीमित नहीं है। स्त्री का स्वभाव भी कोमल होता है। उसकी वाणी में भी कोमल मिठास होती है। उसके संकल्प-सपने भी मधुर होते हैं। उसकी हंसी कोमल होती है, उसकी आंखों में से आग की लपटों से पहले आंसुओं का समुद्र उमड़ आता है। उसके होंठों पर क्रोध से पहले मुस्कान की रेखाएं खिंच जाती हैं। उसकी आत्मा में प्रतिहिंसा की आंधी भरने से पहले ही दया, क्षमा और प्रेम के बादल उमड़ आते हैं।

ऐसी पत्नी सदा पति के हृदय पर राज्य करती है। उस पत्नी

का दुर्भाग्य है जिसे उसकी परिस्थिति इन गुणों से वंचित कर दे। हमारे घरों में कर्कशा और कठोरा पत्नियों की भी कमी नहीं है। पति की उपेक्षा, अप्रीति, दुर्व्यवहार इन्हें कर्कशा बना देते हैं—इनकी वाणी में विष भर जाता है; हृदय में घृणा के बादल छा जाते हैं। संकल्पों में तीव्र प्रतिहिंसा घर कर जाती है। सहानुभूति का स्थान आलोचना ले लेती है। पत्नी जब पति की आलोचना करने लगे तो समझना चाहिए कि वह अपने स्वभाव से च्युत हो गई। उसकी आंखों में तरलता न रहे तो समझना चाहिए कि उसके हृदय में भट्ठी जल रही है।

पति द्वारा उपेक्षा के पहले प्रहार में ही जो पत्नी कोमलता के स्वभाव को छोड़ देती है वह फिर कभी पति का प्रेम पाने की आशा नहीं रखती। पति की उपेक्षा कभी-कभी केवल बाह्य कारणों से होती है। व्यावसायिक जीवन की कठिनाइयां उसकी कोमल भावनाओं को झुलसा देती हैं। बाहर के आघातों का प्रभाव घर पर भी पड़ता है। वह घर के प्रति भी रूखा हो जाता है। उस रुखाई को अपने स्नेह से तरल करने के स्थान पर कुछ पत्नियां उसका बदला रुखाई से देने का निश्चय कर लेती हैं। पत्नी समझती है कि उसे पति के हाथों लाड़-प्यार पाने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह सदा लाड़ली बनकर रहना चाहती है। यह कल्पना उन्हें ठग लेती है। वास्तविक जीवन में इससे विपरीत होता है। पत्नी के पास स्नेह का अक्षय भण्डार होता है इसलिए उसे पति के प्रेम-दान की प्रतीक्षा किए बिना मुक्तहस्त से प्रेम का दान प्रदान करना चाहिए। पति से ही प्रेम-दर्शन की हर समय आशा करना पत्नी के विकृत मस्तिष्क का द्योतक है। जो पत्नियां अपने रूप-सौंदर्य में अपूर्व संमोहन-शक्ति समझती हैं वही

ऐसी दुर्भावनाओं से अपने दिल को पत्थर-सा कठोर बना लेती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति का पहला रूखापन भी घना होकर उपेक्षा और अरुचि में बदलता जाता है। और अन्त में घृणा के हलाहल से ही हृदय का समुद्र भर जाता है।

पति ऐसी पत्नी चाहते हैं जिसका स्वभाव कोमल हो ; जो रुखाई का उत्तर स्नेह से दे ; जो उनकी भूलों को क्षमा कर दे; जिसकी भाषा में कठोरता का एक भी शब्द न हो; जिसके व्यवहार में विनय हो।

आश्चर्य यही है कि स्त्री को कोमलता का ईश्वरीय वरदान मिलने पर भी हमारे घरों के पुरुषों को प्रायः यही शिकायत रहती है कि उनकी पत्नियों का स्वभाव बहुत कड़वा और ज़बान बहुत तीखी है। अपने दूर-पास के घरों की हालत देखकर पुरुषों के उपालम्भ में सत्य का बहुत अंश दिखाई देता है। आजकल की पत्नियां अपशब्दों का बहुत प्रयोग करती हैं।

इस सम्बन्ध में मेरे बहुत-से मित्र अपनी पत्नियों की बातें सुनाते रहते हैं। कुछ की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा।

एक मित्र ने बतलाया कि "शादी हो जाने पर श्रीमतीजी और मैंने यह तय किया कि जो भी कभी दूसरे को गाली देगा या उसके लिए अपशब्दों का व्यवहार करेगा, उसे प्रत्येक गाली पर एक आना जुर्माना देना होगा।"

मैंने पूछा—"कितना जुर्माना देना पड़ा तुम्हें ?"

वह हंसकर बोला—"मुझे नहीं, पत्नी को ही देना पड़ा।"

"कितना ?"

"दिया तो नहीं उसने, लेकिन देती तो आज मैं लखपती बन जाता।"

एक दूसरे पति की कहानी सुनिए। उनके एक मित्र जब बैठक में दाखिल हुए तो उन्होंने देखा कि पति-पत्नी में कुछ बातें चल रही थीं। उनके आते ही पत्नी चली गई। उन्होंने मित्र से पूछा—

"क्यों जी, क्या बातें चल रही थीं ?"

"कुछ नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है ? मैंने तो आवाज़ सुनी थी।"

"मैं तो चुप था, श्रीमतीजी कुछ कह रही थीं।"

"क्या कह रही थीं ?"

"कुछ भी नहीं।"

"फिर वही, कुछ भी नहीं।"

"हां, सचमुच कुछ भी नहीं। अगर गालियों को छोड़ दिया जाए तो वाकई कुछ भी नहीं कह रही थीं।"

अपढ़-गंवार स्त्रियां तो गाली के बिना बात ही नहीं करतीं। किन्तु उनका अपराध क्षम्य है। पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी जब अपशब्द और कटु वचनों पर उतर आएं तो शर्म की बात है। उनकी गालियों का प्रवाह युद्धभूमि की गोलियों से भी अधिक चलता है।

एक बार मैं अपने एक मित्र के घर गया। उनकी पत्नी से पहले कभी भेंट न हुई थी। घर जाकर देखा कि घर के आंगन में दो स्त्रियां गाली-गलौज कर रही थीं। मैंने मित्र को कहा—

"आप उस स्त्री को रोकते क्यों नहीं जो गालियों की बौछार कर रही है।"

"नहीं भाईजान, यह काम मैं नहीं कर सकता।"

"क्यों ?"

"बात यह है कि उनमें से एक मेरी पत्नी है, दूसरी मेरी मां।"

सास और बहू में प्रायः गालियों का युद्ध चला करता है। कटु शब्दों का व्यवहार पति की अपेक्षा पत्नी ही अधिक करती हैं। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि पत्नियों में शिक्षा का कमी होती है। उनका शब्दकोष छोटा होता है। अपनी असहमति प्रकाशित करने के योग्य उनके पास जब कोई समर्थ शब्द नहीं होता तो वे गालियां देती हैं। शिक्षा की कमी उन्हें विनय से वंचित रखती है। 'शिक्षा ददाति विनयम्'—शिक्षा ही मनुष्य को विनम्र बनाती है, सभ्य और शिष्ट बनाती है।

दूसरा कारण है स्त्रियों में हीन भावना के प्रतिशोध की इच्छा। सदियों से पुरुष-समाज स्त्री की कोमलता का शोषण कर रहा है। उनकी प्राकृत प्रवृत्ति का लाभ उठाकर स्त्रियों के साथ अन्याय कर रहा है। इस अन्याय का विरोध स्त्रियां केवल वाङ्मय युद्ध द्वारा ही कर सकती हैं। छल-कपट उन्हें आता नहीं। भाषा के अलंकारों से वे अपने हृदय के घाव को ढकना नहीं जानतीं। हृदय के हलाहल को मधुर शब्दों से छिपाने का कौशल उनमें नहीं होता। जो मन में आया, कह डालती हैं। और जब जो कुछ आया उगल देती हैं, वाणी को संयम की डोर से नहीं बांधतीं। सोचती हैं, हमारा क्या बिगड़ेगा! हमें कौन-सी पदवी दी हुई है जो पति छीन लेगा! दिल का बुखार क्यों न उतारें! क्षणिक आवेश में जो सूझा कह दिया। वह लापरवाही उनके तन-मन में समाई होती है। अपनी अवस्था से वे बेहद निराश हो चुकी होती हैं। पति की नज़रों में अच्छी बनने की उत्सुकता ही नहीं होती उनमें। पति के बाहर की दुनिया को वे पहचानतीं नहीं। किसी और की सम्मति का उनके लिए कोई मूल्य होता ही नहीं।

इसलिए वे वाणी पर संयम करने का कष्ट ही नहीं करतीं, खुली ढील छोड़ देती हैं। यह ढील, यह शिथिलता उनकी नस-नस में समाई होती है। उसका उपचार दूसरा है। लेकिन ऐसी हताश स्त्रियों से कोमलता की आशा नहीं की जा सकती। कोमल वाणी और कोमल व्यवहार बड़े यत्न से साधे जाते हैं।

जीवन की यात्रा बड़ी कठिन मंज़िलों से गुज़रकर पूर्ण होती है। सचाई सदा कड़वी होती है। वास्तविकता कठोर होती है। दुनिया का झंझावात मनुष्य को कठोर, निर्मम और क्रूर बनना सिखा देता है। लेकिन तुम्हें अपनी कोमलता की रक्षा करनी होगी, यदि तुम सफल पत्नी बनना चाहती हो। तुम्हें प्रकृति से शिक्षा लेनी होगी। धान की हरी कोंपलें आंधी में झूमकर भी बनी रहती हैं—जब अपनी ऊंचाई पर अभिमान करने वाला वट-वृक्ष टूटकर धराशायी हो जाता है।

याद रखो, कोमलता से वज्र भी पिघल जाता है। बालरवि की प्रथम किरण का स्पर्श पाकर हिमालय के हिमाच्छादित शिखर भी पिघलकर नीचे आ जाते हैं। 'प्रेम से अप्रेम को जीतो', महात्मा बुद्ध के इस वाक्य को याद रखो।

पति अपनी पत्नी में क्या चाहता है—इस प्रश्न का उत्तर पूरा नहीं हुआ। अगले पत्र में फिर इसकी चर्चा करूंगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति क्या चाहता है ? (२)

अनुकूला सदा तुष्टा दक्षा साध्वी विचक्षणा।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिव स्त्रीर्न संशयः ॥

अनुकूल, सदासन्तुष्ट, कुशल, एकनिष्ठ पत्नी पति के लिए लक्ष्मी के समान पूज्य होती है।

प्रिय कमला,

पहले पत्र में मैंने लिखा था कि पुरुष अपनी पत्नी में—उस स्त्री में जिससे वह प्रेम करता है—कोमलता चाहता है। इस पत्र में मैं उसके मन की अन्य अभिलाषाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश करूंगा।

पुरुष अपनी पत्नी में शर्म और शील चाहता है। वह चाहता है कि उसकी स्त्री का व्यक्तित्व कुछ आवरणों से ढका रहे, रहस्य के परदे में छिपा रहे। पुरुष की इस रहस्यप्रियता का ही परिणाम है कि वह स्त्री को कुछ परदे में रखता है। परदा तो केवल उसकी इच्छाओं का प्रतीक है। परदा इसलिए नहीं होता कि लोग उसकी सुन्दरता पर कुदृष्टि न डालें; किन्तु इसलिए होता है कि उसकी स्त्री का रहस्य बना रहे।

रहस्य का यह आकर्षण मनुष्य-हृदय की स्वाभाविक प्रकृति है। इसलिए उसका मन क्षितिज की ओट में किसी रहस्य को ढूंढ़ा करता है—कुहरे से घिरी घाटियों में रमण करता है, चांदनी के धुंधले प्रकाश में मौन भाव से झूमती डालियों के साथ झूला

करता है।

स्त्री की प्रकृति में जो रहस्य-भरे आकर्षण हैं—उनकी वह पूजा करता है। इस आकर्षण का वह भेद नहीं जान पाता। इसीलिए वह इसका उपासक है। पुरुष की इस सात्त्विक उपासना को चिरजीवी रखने के लिए पत्नी का कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्व को कभी पूर्ण रूप से निरावृत या नग्न न होने दे।

यह भी एक कला है। वस्त्रों से शरीर का आच्छादन करना ही कलात्मक आवरण नहीं हो जाता। कई परिधान ऐसे हैं जो अवयवों को और भी अधिक नग्नता से प्रदर्शित करते हैं। इनका उद्देश्य ही दर्शकों के मन में कामुक इच्छाओं को जागरित करना होता है। गृह-देवियों को इन परिधानों को अपनाने के प्रलोभन से बचना चाहिए।

बहुत चमकदार, भड़कीले कपड़े पहनना भी स्त्री की शिष्टता के विरुद्ध है। वस्त्रों का चुनाव कलात्मक दृष्टि से करना चाहिए। सब स्त्रियों को एक-से वस्त्र शोभा नहीं देते। शरीर की बनावट के अनुसार उनके पहनने के ढंग में भी परिवर्तन होना चाहिए। बिलकुल तंग, कसे हुए और अंगों से चिपटनेवाले कपड़े पहनना स्त्री की शोभा को घटाते हैं, बढ़ाते नहीं।

सौंदर्य-वृद्धि के लिए जो शृंगार किया जाता है उसके प्रयोग में भी बहुत सावधानी की आवश्यकता है। सौंदर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करने से पहले उनकी प्रयोग-विधि सीखनी चाहिए। अनाड़ी लड़कियां उनका अतिशय प्रयोग करना शुरू कर देती हैं। उन्हें यह नहीं मालूम होता कि 'मेक-अप' की सफलता इसीमें है कि वह मालूम न पड़े।

याद रखो, मेक-अप तुम्हारी शारीरिक बनावट में कोई

अन्तर नहीं ला सकता। वह केवल तुम्हारे चर्म-दोषों को चतुराई से छिपाकर रख सकता है। किन्तु पाउडर या गुलाल का थोड़ा-सा भी अधिक प्रयोग या पेंसिल का भवों पर अतिरंजित प्रयोग तुम्हें सुन्दर की बजाय असुन्दर बना सकता है।

सौन्दर्य-प्रसाधनों से सुन्दर बनने का अतिशय प्रयत्न तुम्हें पति की दृष्टि में गिरा देगा। प्रत्येक पति अपनी पत्नी को सुन्दर देखना चाहता है और साधारण शृंगार के प्रति भी उसे रुचि होती है। किन्तु दो बातों का ध्यान रखो। शृंगार बहुत हल्का करो और पति के सामने मत करो।

दिन में दस बार पाउडर पोतना बीमारी है। दिन में एक बार शृंगार करने के बाद उसे बार-बार दोहराने की ज़रूरत नहीं होती। कुछ स्त्रियां बार-बार पाउडर लगाती हैं और घड़ी-घड़ी होंठों को रंगती हैं। तह पर तह जमती ज़ाती है। एक बार सावधानी से मेक-अप कर लो, वही टिका रहेगा। तह पर तह जमाने से वह भद्दा हो जाएगा—टिकेगा भी नहीं।

शृंगार-प्रसाधन स्त्री के व्यक्तित्व को किंचित् रहस्यमय व सुन्दर बनाने में अवश्य सहायता करते हैं किन्तु असली शृंगार तो मन का शृंगार है। मन के आवेशों का संयम और प्रसाधन ही स्त्री की सुन्दरता का रहस्य है।

यह भी कला है। इसे साधने का गुरुमन्त्र संयम है। मन के आवेशों को संयत रीति से अभिव्यक्त करना ही इस कला की सिद्धि है। हृदय का प्रत्येक आवेश शरीर की किसी न किसी चेष्टा में अभिव्यक्त होता है। उन चेष्टाओं को कलापूर्ण बनाना चाहिए।

तुम्हें क्रोध आया है। उसे तुम हाथ-पैर पटककर भी प्रकट कर सकती हो। गंवार लोग इसी तरह करते हैं। किन्तु तुम्हें यह

शोभा नहीं देता। उसपर संयम करो, किसी भी शारीरिक चेष्टा से प्रकट मत होने दो। आंखों को लाल करके या घूर करके भी मत जाहिर करो। क्रोध को पी जाना ही अच्छा है। फिर भी—यदि उसका प्रकट करना अभीष्ट है, तो तुम्हारे कहे गए दो शब्द अभिप्राय को प्रकट कर देंगे। हल्का-सा व्यंग्य भी तुम्हारे विपक्षी को निरुत्तर कर देगा।

तुम्हें हंसी आई है। संयम नहीं करोगी तो तड़ातड़ हंस पड़ोगी। जैसे बारूद की आतिशबाज़ी फटती है। कुछ लोग पास बैठे हुए साथियों की पीठ पर हाथ मारकर भी अपने आवेग को शांत कर लेते हैं। सारा मुंह खोलकर हंसना भी अशिष्टता है। बत्तीसी निकालकर हंसने से सुन्दर चेहरे भी खराब हो जाते हैं। कई चेहरों की सजावट तभी अच्छी लगती है जब तक वे पत्थर की मूर्ति बने रहें। हंसने-रोने या किसी भी आवेश के प्रकट होते ही उनका सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत कई मामूली चेहरों पर भी मुस्कान ऐसी खिलती है कि उनकी सुन्दरता दस गुणा बढ़ जाती है। सुन्दर वही है जिसकी हंसी सुन्दर है, उसकी कोमल मुस्कान में सम्मोहन होता है। पत्नी को भी अपना सम्मोहन चिरजीवी रखने के लिए अपनी हंसी में शालीनता-शिष्टता लानी होगी। शिष्ट हंसी का नाम ही मुस्कान है, उसमें एक रहस्य-भरा आकर्षण होता है। रहस्य-प्रेमी पति उस मुस्कान पर मुग्ध होते हैं।

रोने में भी संकोच से काम लेना चाहिए। मशहूर है—'स्त्रीणां रोदनं बलम्', अर्थात् रोना स्त्रियों का हथियार है। मूर्ख स्त्रियां इसी बल से पतियों पर विजय पाती हैं। पुरुष पत्नी के आंसू देखकर हार जाता है। लेकिन इस तरह हारकर उसके

मन में अपनी पत्नी के लिए प्रेम और आदर कम हो जाता है। रोना गुण नहीं, दोष है—आवेशों पर संयम करने की असफलता का विज्ञापन करना है। फूट-फूटकर रोने वाली स्त्रियां ही प्राय: असभ्यता से खिल-खिलाकर हंसने वाली और तड़ातड़ गालियां देने वाली होती हैं। असंयम कभी एकांगी नहीं होता। जो एक आवेश पर काबू पा सकता है, वही दूसरे पर पा सकता है। पुरुष ऐसी रोने वाली पत्नी का कभी आदर नहीं करता। रोना एकान्त में चाहिए और हंसना सामने। आंखों से गिरता हुआ आंसू भी उतना प्रभाव करता है जितना दोनों आंखों से बहती हुई जल-धारा करती है।

पति अपनी पत्नी में एकान्तनिष्ठा चाहता है। पत्नी स्वभाव से एकनिष्ठ होती है। इसलिए पति कोई ऐसी चीज़ नहीं चाहता जिसे देने में पत्नी को साधना करनी पड़े। अग्नि को साक्षी रख-कर तुमने अपने पति के सुख-दुःख में समभागी होने का प्रण किया है। उस समय वह प्रण एक रसम हो सकती थी, किन्तु जब दोनों एक-दूसरे के प्रति पूर्ण आत्मार्पण करके एकात्म हो चुके हों तब किसी दूसरे का ध्यान भी पाप है।

किन्तु, मैं यहां पाप-पुण्य की समीक्षा नहीं कर रहा। मैं तो 'पति अपनी पत्नी से क्या चाहता है' इसकी चर्चा कर रहा था; वह भी केवल व्यावहारिक सतह पर। बहुधा यह होता है कि पत्नी सर्वथा निर्दोष भाव से पति के मित्रों से परिचय बढ़ाती है। कई परिचय केवल जान-पहचान तक रह जाते हैं। कई परिचय सहानु-भूति के परदे में मैत्री और परस्पर स्नेह की सतह तक पहुंच जाते हैं। कभी एकान्त की घड़ियों में लेटी-लेटी पत्नी सोचने लगती है—'काश ! मेरा पति भी इसकी तरह हंसमुख और चुलबुला

होता !' धीरे-धीरे यह होता है कि पति के लिए पूर्ण भक्ति रखते हुए भी पत्नी का मन उसके मित्र की निकटता चाहने लगता है। वह उससे ही हंसना-बोलना-खेलना पसन्द करने लगती है। और सोचती है—'इसमें क्या दोष है ? पति की पत्नी होने से मैं क्या दुनिया में किसीसे हंसकर बोल भी नहीं सकती ? जो पति का मित्र है, क्या वह मेरा मित्र नहीं हो सकता ?'

मैं इसका उत्तर नहीं दूंगा। पुरुष-पुरुष की मैत्री और स्त्री-पुरुष की मैत्री में बड़ा अन्तर है। पुरुष की मैत्री एकांगी हो सकती है। वह केवल समरुचि होने से भी पनप सकती है। परस्पर सराहना से भी दो पुरुष मित्र बन जाते हैं। वह सराहना केवल गुणों तक सीमित रहती है। लेकिन स्त्री जब किसीके गुणों को सराहती है तो उसकी प्रशंसा प्रशंसित व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति अनुराग में बदल जाती है। उस अनुराग को थोड़ी भी सुविधा मिले तो वह प्रेम का—एकांतिक प्रेम का रूप पकड़ लेता है। एक लड़की यदि किसी कलाकार की कृति देखते ही कलाकार पर मुग्ध हो जाती है, तो उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसे मोह लेता है।

इसलिए इस कथन में बड़ी सचाई है कि स्त्री-पुरुष का संग सफल होकर प्रेम में और असफल होकर मैत्री में बदल जाता है। वह मैत्री नहीं, भग्न प्रेम की स्मृति-मात्र होतीहै। ऐसे खण्डहरों को जीवन में महत्त्व देना मनुष्य की गति में अवरोधक होता है। जो अपने भविष्य से निराश होते हैं वही भूतकाल की स्मृतियों में आनन्द लेते हैं। पति-पत्नी की जीवन-यात्रा में ऐसे खंडहरों को स्थान नहीं मिलना चाहिए।

भग्न प्रेम की इन स्मृतियों में डूबा हुआ पत्नी का मन पति के प्रति कभी एकनिष्ठ नहीं रह सकेगा। एकनिष्ठा सच्ची होनी

चाहिए। पति यह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी उसकी किसीसे तुलना करे। दूसरे की सराहना करते हुए पत्नी अपने पति को हल्का बनाती है। जहां यह तोल-माप रहेगा वहां एकात्मकता नहीं होगी।

इसलिए मैं तुम्हें सलाह दूंगा कि तुम पति से अन्य किसी पुरुष से मैत्री मत बनाओ। तुम्हारे जीवन-वृत्त का केन्द्र-बिन्दु पति में ही होना चाहिए। वही तुम्हारी दुनिया है—वही इस लम्बी यात्रा में तुम्हारा साथी है। उसके साथ तुम्हें चलना है।

दूसरे सब दो-चार कदम चलकर अपनी-अपनी राह चले जाएंगे। उनके साथ शिष्ट व्यवहार रखो, जान-पहचान रखो लेकिन कभी घनिष्ठता न बढ़ाओ। इस सम्बन्ध में इस मर्यादा का पालन ही अच्छा है कि पति की उपस्थिति में ही दूसरे पुरुष से मेल-जोल करो। दूसरे पुरुष से निकटता बढ़ाना आग से खेलना है। इस खेल में क्षणिक उन्माद है—और कुछ नहीं। जो बिछुड़ चुका उसे भूल जाओ और जो तुम्हारा नहीं बन सकता उसे निकट मत आने दो।

जब पति से तुम्हारी आत्मीयता इतनी बढ़ जाएगी कि उसके दोष भी गुण दिखाई देने लगेंगे तभी तुम उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बनोगी। तब तुम पति के गुण-दोष की आलोचना बन्द कर दोगी, उसका उपहास करना छोड़ दोगी। गुण-दोष सभीमें होते हैं। लेकिन जो अपना होता है उसके गुणों पर ही दृष्टि जाती है। उसके दोष उसके प्रेम में छिप जाते हैं। तुम उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसकी नहीं बनीं, बल्कि उसके प्रेम ने तुम्हें उसका बना दिया है। पति यह चाहता है कि उसकी पत्नी भी इस अपने-पन पर अभिमान अनुभव करे। उसकी नज़रों में दूसरों के स्वर्ण-

होता !' धीरे-धीरे यह होता है कि पति के लिए पूर्ण भक्ति रखते हुए भी पत्नी का मन उसके मित्र की निकटता चाहने लगता है। वह उससे ही हंसना-बोलना-खेलना पसन्द करने लगती है। और सोचती है—'इसमें क्या दोष है ? पति की पत्नी होने से मैं क्या दुनिया में किसीसे हंसकर बोल भी नहीं सकती ? जो पति का मित्र है, क्या वह मेरा मित्र नहीं हो सकता ?'

मैं इसका उत्तर नहीं दूंगा। पुरुष-पुरुष की मैत्री और स्त्री-पुरुष की मैत्री में बड़ा अन्तर है। पुरुष की मैत्री एकांगी हो सकती है। वह केवल समरुचि होने से भी पनप सकती है। परस्पर सराहना से भी दो पुरुष मित्र बन जाते हैं। वह सराहना केवल गुणों तक सीमित रहती है। लेकिन स्त्री जब किसीके गुणों को सराहती है तो उसकी प्रशंसा प्रशंसित व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति अनुराग में बदल जाती है। उस अनुराग को थोड़ी भी सुविधा मिले तो वह प्रेम का—एकांतिक प्रेम का रूप पकड़ लेता है। एक लड़की यदि किसी कलाकार की कृति देखते ही कलाकार पर मुग्ध हो जाती है, तो उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसे मोह लेता है।

इसलिए इस कथन में बड़ी सचाई है कि स्त्री-पुरुष का संग सफल होकर प्रेम में और असफल होकर मैत्री में बदल जाता है। वह मैत्री नहीं, भग्न प्रेम की स्मृति-मात्र होतीहै। ऐसे खण्डहरों को जीवन में महत्त्व देना मनुष्य की गति में अवरोधक होता है। जो अपने भविष्य से निराश होते हैं वही भूतकाल की स्मृतियों में आनन्द लेते हैं। पति-पत्नी की जीवन-यात्रा में ऐसे खंडहरों को स्थान नहीं मिलना चाहिए।

भग्न प्रेम की इन स्मृतियों में डूबा हुआ पत्नी का मन पति के प्रति कभी एकनिष्ठ नहीं रह सकेगा। एकनिष्ठा सच्ची होनी

जी—१०

चाहिए। पति यह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी उसकी किसीसे तुलना करे। दूसरे की सराहना करते हुए पत्नी अपने पति को हल्का बनाती है। जहां यह तोल-माप रहेगा वहां एकात्मकता नहीं होगी।

इसलिए मैं तुम्हें सलाह दूंगा कि तुम पति से अन्य किसी पुरुष से मैत्री मत बनाओ। तुम्हारे जीवन-वृत्त का केन्द्र-बिन्दु पति में ही होना चाहिए। वही तुम्हारी दुनिया है—वही इस लम्बी यात्रा में तुम्हारा साथी है। उसके साथ तुम्हें चलना है।

दूसरे सब दो-चार कदम चलकर अपनी-अपनी राह चले जाएंगे। उनके साथ शिष्ट व्यवहार रखो, जान-पहचान रखो लेकिन कभी घनिष्ठता न बढ़ाओ। इस सम्बन्ध में इस मर्यादा का पालन ही अच्छा है कि पति की उपस्थिति में ही दूसरे पुरुष से मेल-जोल करो। दूसरे पुरुष से निकटता बढ़ाना आग से खेलना है। इस खेल में क्षणिक उन्माद है—और कुछ नहीं। जो बिछुड़ चुका उसे भूल जाओ और जो तुम्हारा नहीं बन सकता उसे निकट मत आने दो।

जब पति से तुम्हारी आत्मीयता इतनी बढ़ जाएगी कि उसके दोष भी गुण दिखाई देने लगेंगे तभी तुम उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बनोगी। तब तुम पति के गुण-दोष की आलोचना बन्द कर दोगी, उसका उपहास करना छोड़ दोगी। गुण-दोष सभीमें होते हैं। लेकिन जो अपना होता है उसके गुणों पर ही दृष्टि जाती है। उसके दोष उसके प्रेम में छिप जाते हैं। तुम उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसकी नहीं बनीं, बल्कि उसके प्रेम ने तुम्हें उसका बना दिया है। पति यह चाहता है कि उसकी पत्नी भी इस अपनेपन पर अभिमान अनुभव करे। उसकी नज़रों में दूसरों के स्वर्ण-

मन्दिर अपनी तिनकों की झोंपड़ी से कम मूल्य के हों।

पति की थोड़ी आय पर खीझने वाली पत्नी कभी पति के साथ अपनापन नहीं बना सकती। उसे भी याद रखना चाहिए कि वह भी अन्य लाखों स्त्रियों से कम सुन्दर और गृह-कार्य में कम निपुण है। जो पति अपनी पत्नी के सुघड़ न होने या बहुत सुन्दर न होने की शिकायत करते हैं वे भी मूर्ख हैं। मैं उनसे पूछता हूं, क्या अपने व्यक्तित्व से वे पूर्णतया सन्तुष्ट हैं? क्या अपनी कमज़ोरियां उनके सामने नहीं हैं? लेकिन अपने से तो उन्हें कभी शिकायत नहीं हुई। विधाता ने जो दिया उसे वरदान मानकर सन्तोष कर लिया। पति-पत्नी को भी एक-दूसरे के व्यक्तित्व से पूर्णतया सन्तुष्ट रहना चाहिए। असन्तुष्ट पत्नी कभी पति को प्रसन्न नहीं कर सकती और न ही घर को खुशहाल रख सकती है। पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसे पाकर अपने को धन्य माने, उसीकी बनकर रहे; आत्यन्तिक दुःख में भी वह किसी और का आश्रय न ढूंढ़े; उसीमें पत्नी की आसक्ति हो; उसके मन-बुद्धि-व्यवहार सब उसीके अर्पित हों।

प्रेम इसी तरह की एकांत लगन चाहता है। कबीर के अनुसार—

> पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय।
> ना मैं देखूं और को ना तोहि देखन देउं।।

प्रेम एकांत आसक्ति की अपेक्षा रखता है।

पति के प्रति पत्नी का एकनिष्ठ होना तभी सम्भव है यदि वह पति के चरित्र पर विश्वास रखे। स्त्रियां बहुत सन्देहशील होती हैं। पति घर से बाहर रहता है। आज के युग में वह अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में आए बिना नहीं रह सकता। जीवन का कोई

भी क्षेत्र स्त्रियों से खाली नहीं है। पत्नी भी यह बात जानती है। इसलिए वह पति की गिरावट की हर समय चिन्ता करती रहती है। प्रतिक्षण वह पति की आंखों में दूसरी स्त्री की छाया खोजती रहती है, पति को हर बात में दूसरी स्त्री का प्रसंग ढूंढ़ती है।

एक दिन एक पतिदेव ने बहुत दिन बाद स्त्री को प्रसन्न मुद्रा में देखकर कहा—

"इस समय तुम्हारे दांत कैसे चमक रहे हैं ! ठीक मोती की तरह।"

"मोती ? यह मोती कौन है ?"

—पत्नी के मुख से निकल गया। उसने समझा—पतिदेव को किसी अन्य मोती नाम की स्त्री का स्मरण हो आया है और वे उसके दांतों की तुलना मेरे दांतों से कर रहे हैं। पति का अभिप्राय तो उस कीमती स्फटिक से था जो सदा स्वच्छ और आबदार रहता है।

दुनिया में जितनी यातनाएं हैं उनमें संदेही स्वभाव की पत्नी का पति होना भी बड़ी यातना है। अन्य यातनाओं से तो पुरुष को कभी-कभी मुक्ति मिल भी जाती है, लेकिन सन्देहशील स्त्री के सन्देह का जाल पति को सोते-जागते हर समय जकड़े रहता है।

जिस पत्नी के मन में पति के लिए संदेह घर कर जाता है वह उस संदेह की आग में स्वयं भी जलती रहती है। उसकी आंखें जासूस की तरह हर समय पति का पीछा करती रहती हैं और वह पति की हर वस्तु को अपराध साबित करने के पक्ष में सबूत की तरह टटोलती है।

एक दिन की बात है। धोबी को कपड़े धुलने को देने के लिए श्रीमतीजी पति के कोट की तलाशी ले रही थीं। ऐसी पत्नियां

किसी न किसी बहाने पति की चीज़ों को टटोलती ही रहती हैं। कोट की जेब में उसे एक छोटा-सा कागज़ का पुर्ज़ा मिला, जिसपर लिखा था, "तारा—पचास रुपये।" पत्नी ने उसे किसी बड़े अपराध की गवाही मानकर अपने पास सुरक्षित रख लिया। थोड़ी देर में एक फोन आया। फोन सुनकर पतिदेव लौटे तो पत्नी ने पूछा—

"किसका फोन था ?"

"किसी खास का नहीं, तुम उसे नहीं जानतीं।"

"बताने में कुछ हर्ज है ?"

"लाभ भी क्या, जब तुम उसे जानती ही नहीं !"

"फिर भी मैं पूछना चाहती हूं—तुम्हें बताना ही पड़ेगा।"

"इतनी ज़िद क्यों करती हो ? क्या बात है ?"

"तुम आज किसीको पचास रुपये देने वाले हो ?"

"किसे ?"

"एक लड़की को ?"

"तुम्हें सपना आया है क्या ? मैं तो किसी लड़की को नहीं जानता जिसे रुपये देने हों।"

"क्यों भोले बनते हो ? मेरे पास पक्का सबूत है कि तुम एक लड़की को पचास रुपये देने वाले हो।"

यह कहकर पत्नी ने कागज़ का पुर्ज़ा सामने रख दिया और व्यंग्य में पूछा—

"यह तारा तुम्हारी कौन है ?—कोई नई प्रेमिका है या उपपत्नी ?"

कागज़ को देखकर पति को याद आ गया कि कल रेस में 'तारा' घोड़ी पर पचास रुपये लगाने की किसीने 'टिप' दी थी। वही उसने लिख लिया था।

"ओह, यह तो एक घोड़ी की नाम है," कहकर पतिदेव खिलखिला उठे। लेकिन पत्नी तब तक नहीं मानी जब तक पति ने उसे अखबार में 'तारा' का नाम रेस में दौड़ने वाली घोड़ियों में नहीं दिखा दिया।

सन्देही पत्नी का मन ज़रा-सी बात को पहाड़ बनाकर गृह-जीवन की धारा में अवरोध पैदा करता रहता है। और विश्वासी पत्नी पति के बड़े से बड़े अपराध को भी भूलकर गृह-जीवन की समता को बनाए रखती है। जीवन का साथ विश्वासी हृदय ही निभा सकते हैं। सन्देह की घटा छंटने के बाद प्रेम का चांद फिर आकाश में चमक उठता है। परस्पर विश्वास की नाव जीवन-सागर की लहरों पर तैरती हुई अपनी मंज़िल पर पहुंच जाती है। 'हम सदा साथ रहेंगे,' यह विश्वास ही स्त्री-पुरुष को साथ रखता है।

'पति क्या चाहते हैं' प्रश्न का कोई भी उत्तर पूरा उत्तर नहीं होगा। लेकिन इतना उत्तर भी पूरा हो सकता है कि वे नारी में सच्चा साथी चाहते हैं—ऐसा साथी जो इस साथ का मूल्य अपने जीवन से भी अधिक मानता है। नारी में ऐसा साथी पाकर ही पुरुष का विकास होगा। उसकी आत्मा नई स्फूर्ति पाएगी। वह वही चाहता है जो नारी के पास है, और केवल नारी के पास।

तुम्हारा हितचिंतक

....

पत्नी का अंकुश

पति पर शासन करने की इच्छा
गृह-सौख्य का नाश कर देती है।

प्रिय कमला,

तुमने अपने पत्र में यह लिखा है कि मैं विचित्र परेशानी में हूं। मेरे पति की मनोवृत्ति में कुछ दिनों से ऐसा परिवर्तन हो गया है कि वे मेरे कहने पर कान नहीं देते। पहले तो मैं जैसा कहती थी मान जाते थे। मैं जो भी कहती हूं उनके भले के लिए कहती हूं। उनकी भलाई के लिए मैंने अगणित कष्ट सहे हैं, इस बात को वे भी जानते हैं। फिर भी अब वे खिचे-खिचे-से रहते हैं। मैं चाहती हूं कि आप मुझे न लिखकर एक पत्र उन्हें इस आशय का लिख दें कि वे मेरी बात मान लिया करें।

तुम्हारा कहना न मानकर मैं फिर तुम्हें ही पत्र लिख रहा हूं। इसका उपचार भी तुम्हारे हाथ में है। एक लतीफा तुम्हें याद है? एक पत्नी डाक्टर के पास पति के सिरदर्द की दवाई लेने गई। डाक्टर ने दो गोलियां पत्नी के हाथ में दे दीं। पत्नी ने पूछा—

"इन्हें किस समय लेना होगा?"

"रात को सोने से पहले।"

"सोने का समय तो बदलता रहता है। आप यह बतलाइए कि कितने बजे?"

"आप कितने बजे सोती हैं ?"

"जब वे सो जाते हैं—उसके बाद।"

"फिर भी कब ?"

"दस बजे।"

"तब, इसे पौने दस बजे ले लीलिए।"

"उन्हें तो बारह से पहले नींद नहीं आती।"

डाक्टर ने उत्तर दिया, "यह दवा उनके लिए नहीं, आपके लिए है। आप चैन से सो जाएंगी, तो उनका सिरदर्द खुद दूर हो जाएगा।"

मैंने आसपास के घरों की बहुत-सी स्त्रियों में यह दोष देखा है कि वे कुछ वर्षों के गृह-जीवन के बाद पतियों पर अनुशासन शुरू कर देती हैं। ये स्त्रियां प्रायः वही होती हैं जो गृह-कार्य में बहुत दक्ष, पतिपरायणा और आदर्श माता होती हैं। पत्नीत्व में भी ये आदर्श की बहुत सीमा के पास पहुंच जाती हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि इन्होंने पति-सेवा में अनेक कष्ट झेले होते हैं और बच्चों की मां बनकर बहुत कुर्बानियां की होती हैं। पति की दृष्टि में उनका आदर होता है। हृदय से वह इन सेवाओं के लिए पत्नी का कृतज्ञ होता है।

इस मौन कृतज्ञता से पहले पत्नी को सन्तुष्ट होना चाहिए। किन्तु होता इसके विपरीत है—वह प्रायः सन्तुष्ट नहीं होती। वह समझने लगती है कि उसकी कुर्बानियों का पूरा आदर नहीं किया जा रहा। इससे वह विक्षुब्ध हो जाती है। यह विक्षोभ ही उसमें शासन की प्रवृत्ति जागरित कर देता है।

घर की मालकिन होने के सम्पूर्ण अधिकारों का वह बड़ी निर्दयता से प्रयोग शुरू कर देती है। घर की व्यवस्था में पति की

सलाह या रुचि का ध्यान नहीं रखती। उससे सलाह-मशविरा करने की आवश्यकता भी नहीं समझती। उसकी पसन्द-नापसन्द की परवाह भी नहीं की जाती।

पहले दोनों ने मिलकर घर बनाया था। घर की हर चीज़ दोनों की सलाह से आई थी। छोटी-छोटी बात पर दोनों ने एक-दूसरे की रुचि का ध्यान रखा था। फर्नीचर कैसा हो, परदों का रंग कौन-सा हो, फूलदान कौन-सा अच्छा है—इन सबका निर्णय दोनों ने मिलकर किया था। अब पत्नी यह कहने लगती है, "आपको इन चीज़ों की तमीज़ नहीं है।"

घर में बच्चों के आने के बाद यह रोग और भी भयंकर हो जाता है। चाहिए तो यह कि उनकी देखरेख और उनके शिक्षण आदि की सब व्यवस्था दोनों की सलाह से हो, लेकिन वहां भी अनुशासनप्रिया माता अपने कन्धों पर ही इसका बोझ ले लेती है। पति को यह कहकर अलग कर दिया जाता है, "यह महकमा मेरा है, आपका नहीं। मेरे और बच्चों की बात में आप दखल न दें।"

पतियों को इस तरह मुट्ठी में बन्द करने का उद्योग पति की दृष्टि में पत्नी को अप्रिय बना देता है। तुम्हें मालूम ही है, बन्द मुट्ठी में तो मिट्टी भी नहीं रहती, बिखर जाती है। जिनके हृदय में जगह नहीं रहती, वे ही मुट्ठी में रखने की बातें सोचती हैं। पति का स्थान हृदय है—मुट्ठी नहीं।

शासन के अंकुश से पति को सीधे रास्ते पर लाने के प्रयत्न भी निरर्थक होते हैं। अंकुश का प्रयोग पशु के लिए होता है। मनुष्य का वशीकरण अंकुश से नहीं, प्रेम से होता है। पथ-भ्रष्ट पति को भी रास्ते पर लाना हो तो भी अंकुश का प्रयोग नहीं

करना चाहिए। रास्ता दिखाने के लिए प्रेम का दीपक जलाया जाता है। अंकुश के बल पर चलाओगे तो वह एक ठोकर से बचकर दूसरी ठोकर का शिकार हो जाएगा।

पति पर शासन करने की इच्छा होते ही स्त्री अपनी मृदुलता का आकर्षण खो देती है। स्त्री की मृदुलता स्वयं ही पति पर शासन कर सकती है। यह सच है कि पुरुष स्वभाव से अहंभावी है, किन्तु स्त्री के प्रेम के आगे वह अपने 'अहं' को भूल जाता है।

एक बात कभी न भूलना। शासक और शासित में कभी प्रेम नहीं रह सकता। शासित व्यक्ति का मन शासन करने वाले के प्रति तीव्र घृणा से भर जाता है। शासन कितना ही कल्याणमय हो, वह प्रेम-भावना का स्वाभाविक शत्रु है।

जहां पति के मन में शासन की भावना जागेगी, वहां भी यही प्रतिक्रिया होगी। स्त्री के मन में पति के प्रति गहरी घृणा पैदा हो जाएगी। आज के समाज में घृणा के विष से भरे दम्पतियों की संख्या कम नहीं है।

मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी गिनती भी उन्हीं अभागे पति-पत्नी में हो जाए। वे तुम्हारा कहना नहीं मानते, इस शिकायत की जड़ में जो भूल है, उसका पता लगाने की कोशिश करो। क्या यह सच नहीं है कि पहले वे तुमपर जान देने को भी तैयार हो जाते थे? उस समय तुम जो कहती थीं, प्रेम से कहती थीं। आज अधिकार से कहती हो। यही भेद है। तुम्हारी शैली में अधिकार की कर्कशता समा गई है। पत्नी होने के नाते तुम्हें समाज ने जो अधिकार दिए हैं, मां होने के कारण तुम्हें जो पदवी मिली है, तुम उसके प्रयोग के लिए आतुर हो गई हो।

इन अधिकारों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब दूसरा कोई चारा न रहे। अधिकार की इच्छा और प्रेम से अपनी बात मनवाने की इच्छा, दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं।

तुम भी यदि पहले की तरह उनकी इच्छाओं का, उनकी भावनाओं का सम्मान करने लगोगी तो उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी; प्रेम का प्रतिदान अवश्य मिलता है।

इसका आग्रह मत करो कि उनकी भलाई का ज्ञान उनसे भी अधिक तुमको है। यह बात कोई भी नहीं सुनना चाहता। यह कहकर तुम उन्हें मूर्ख उद्घोषित करती हो। अपनी बुद्धि सबको बड़ी लगती है। तुम भी अपने को उनसे अधिक समझदार समझती हो। इसमें कोई असाधारण बात नहीं है। किन्तु यह बात उनके सामने कहकर तुम उनके प्रेम को सदा के लिए खो दोगी।

अपनी इच्छाओं को घर का कानून बनाने या सत्ताधारी बनने की कोशिश मत करो। तुम्हें सूर्योदय से पहले ही उठने की आदत है। इसके बहुत गुण हैं। किन्तु पतिदेव को देर तक सोने की आदत है। कुछ दिन तो तुम उनकी परवाह करती रहीं। बाद में सुबह उठकर तुमने घर की सफाई शुरू कर दी। दरवाज़े खट-खट बजने लगे। कपड़े फटकारने की आवाज़ ऊंची होती गई। पतिदेव को बुरा लगा, मगर बोले नहीं। करवट बदलकर फिर सो गए या चादर का पल्ला मुंह पर डाल लिया। कुछ दिन बाद तुमने उनकी चादर खींच ली और हाथ पकड़कर उठा दिया। तुमने आग्रह किया—

'घूमने चलो।'

'मुझे सोने दो।'

'सुबह का घूमना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।'

'तो तुम घूम आओ।'

'मैं अकेली कैसे जाऊं ?'

इस युक्ति का कोई उत्तर नहीं था। अनिच्छा से उन्हें भी साथ चलना पड़ा। घूमने के बाद शीघ्र ही शीतल जल से स्नान करने पर तुमने उपदेश देना शुरू कर दिया। ठण्डे पानी से नहाने पर उन्हें ज़ुकाम हो गया। फिर भी उन्हें ज़रूरी काम था। वे काम पर जाने का आग्रह करने लगे। तुमने उन्हें बिस्तर पर लिटा दिया; डाक्टर की यह बात याद थी कि ज़ुकाम में पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

'ज़रा वह अखबार दे दो।'

'नहीं, तुम्हें ज़ुकाम है।'

रोज़ अखबार पढ़ने का व्यसन था। वे छटपटा उठे। लेकिन तुम्हें क्या ? तुम तो उनके कल्याण की भावना से ही कठोर अनुशासन कर रही थीं।

शाम को कुछ मित्र आए। तुमने उन्हें दरवाज़े से ही विदा कर दिया। पूछने पर यही उत्तर था, 'तुम्हें ज़ुकाम है।'

मित्रों ने क्या सोचा होगा, यह विचार तुम्हारे पति के मन में अशान्ति पैदा करने लगा। पत्नी को कहा—

'दो मिनट बात कर लेते तो क्या हर्ज था ?'

'एक दिन बात न की तो कौन-सी आफत आ गई ?'

तुम्हारे इस उत्तर से उनके दिल को चोट लगी। लेकिन तुम्हारा दावा था कि उनके कल्याण के लिए ही तुमने ऐसा किया था।

गृहस्थ जीवन में ऐसी सैकड़ों घटनाएं होती रहती हैं। एक

अवधि तक उन्हें सहन किया जाता है। उनकी परवाह नहीं की जाती। फिर ये बातें मन में गांठ-सी डाल जाती हैं; मन को मैला कर जाती हैं; हल्का-सा खिचाव पैदा कर जाती हैं।

समझदार दम्पती ऐसी खिचाव पैदा करने वाली बातों का जल्दी ही समाधान ढूंढ़ लेते हैं। एक-दूसरे की रुचि को पहचान-कर अपना मार्ग निश्चित कर लेते हैं। एक को संगीत का शौक है, दूसरे को खेलों में भाग लेने का। एक को दुःखान्त नाटक अच्छे लगते हैं, दूसरे को सुखान्त। पति को सैर का शौक है, पत्नी को सिनेमा का। एक-दूसरे का ध्यान रखकर दोनों अपना कार्यक्रम ऐसा बनाते हैं कि दोनों के मन की बात पूरी होती रहे।

किन्तु, पत्नी के मन में यदि यह धारणा बस जाए कि दूसरे की रुचियां अकल्याणकारी हैं और अपनी कल्याणकारी, तब वह अपनी इच्छाओं को पति पर लादने का यत्न करने लगती है। इस यत्न से सम्पूर्ण कार्यक्रम ही बुरा हो जाता है।

इसका प्रारम्भ वाद-विवाद से होता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों को अप्रिय बनाने में वाद-विवाद का बड़ा भाग है। इससे बचना चाहिए। सब जानते हैं कि वाद-विवाद से मतभेदों की खाई और भी गहरी होती है। वादी-प्रतिवादी दोनों अपने पक्ष में युक्तियां ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कई ऐसी बातों का पता लगा लेते हैं जो उनके मन में पहले कभी आई ही नहीं थीं। उन बातों से उनका मन और भी पुष्ट हो जाता है। कारण यह कि वे उस समय केवल अपने पक्ष को पुष्ट करने वाली युक्तियां ही ढूंढ़ते हैं। कुछ तो उन नई युक्तियों के कारण और कुछ केवल हठ से उनकी कट्टरता और भी बढ़ जाती है। विरोध का रंग प्रत्येक युक्ति-प्रयुक्ति के बाद गहरा होता जाता है।

इस वाद-विवाद का बहुत बुरा असर यह पड़ता है कि इसके बाद समझौते का द्वार बन्द हो जाता है। प्रत्येक पक्ष दूसरे की बात का विचार करना भी अपना अपमान समझने लगता है।

फिर भी—कई पत्नियां युक्ति के बल पर पति को अपनी बात मनवाने का आग्रह करती हैं। इसमें सफलता नहीं मिलती तो वे पति को मूर्ख समझने लगती हैं। उनकी धारणा है कि जो व्यक्ति युक्ति-संगत बात भी नहीं मानता वह केवल अनुशासन से ही काबू में लाया जा सकता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

पति का व्यवसाय

पत्र | १९

- सम्पूर्ण व्यक्तित्व से प्रेम ;
- पति के व्यवसाय से अरुचि न रखो;
- जीवन-संगिनी केवल 'घर वाली' नहीं;
- सलाह दो, दखल नहीं;
- पति के मित्रों से व्यवहार।

प्रिय कमला,

जीवन-साथी के प्रेम का अर्थ अभी तक तुम अच्छी तरह समझ गई होगी। उस व्यक्तित्व से तुम्हारा घनिष्ठ परिचय हो गया होगा। व्यक्तित्व में शरीर और मन की सभी विशेषताएं आ जाती हैं। उनकी मानसिक भावनाओं और व्यावहारिक परिस्थितियों से भी तुम्हारी जानकारी हो गई होगी। प्रत्येक मनुष्य कुछ संस्कारों से बंधा होता है, कुछ भावनाओं की लहरों में तैरता रहता है और अपने आसपास कुछ विशेष परिस्थितियां बना लेता है, उन सबसे तुम्हारा परिचय हो गया होगा।

मुझे मालूम है, भगवान ने स्त्रियों में अन्तर्दृष्टि दी है कि वे बहुत जल्दी पुरुष के बाह्य-अन्तर को परख लेती हैं। खास कर जिससे वे प्रेम करती हैं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को खूब जान लेती हैं। यही अन्तर्ज्ञान उन्हें प्रेम के मार्ग में सावधानी से चलने का निर्देश देता है और पूर्ण सावधान रहते हुए भी वे पुरुष को अपने हृदय का पूर्ण प्रेम अर्पित कर सकती हैं।

जब हम किसीसे प्रेम करते हैं तो उसकी सभी प्रिय वस्तुओं से प्रेम करते हैं। उसके कामों से भी हमारा प्रेम होता है। विवाहित प्रेम में भी यही होना उचित है। स्त्री को पुरुष के निजी व्यक्तित्व से ही नहीं, उसके कार्य से भी प्रेम होना चाहिए। पुरुष को अपना कार्य बड़ा प्रिय होता है। वह उसकी रोटी-कपड़े का ही सहारा नहीं होता, उसके सपनों में भी समाया होता है। उसकी जवानी के सुनहरे दिन उसकी साधना में बीते हैं। न जाने कितनी रातें जागकर उसने उन परीक्षाओं को पास किया होता है जो उसे वहां तक पहुंचने के योग्य बनाती हैं।

उन दिनों तुम उनके पास नहीं थीं। फिर भी तुम उस तपस्या का अनुभव कर सकती हो। तुमने भी तो शिक्षा पाई है। शिक्षा-काल की परीक्षाओं से भी कठिन वे परीक्षाएं हैं जिनमें उस शिक्षा को आजीविका के सांचे में ढालने का श्रम करना पड़ता है। कठिनाई से उपलब्ध वस्तु और भी प्यारी हो जाती है। तुम्हारे पति ने जिस व्यवसाय में सफलता पाई है उससे उन्हें बहुत प्रेम है। तुम्हें भी उससे उतना ही प्रेम होना चाहिए। तुम्हें भी उसका आदर करना चाहिए और उनकी व्यवसाय-सम्बन्धी कठिनाइयों को आसान बनाने में सक्रिय नहीं तो मौन सहयोग अवश्य देना चाहिए।

यह बात तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं कि हमारे घरों की गृह-देवियां प्रायः पति के व्यवसाय से उदासीन रहती हैं। पति की आजीविका का कौन-सा साधन है—इस प्रश्न पर वे तब तक ध्यान ही नहीं देतीं जब तक श्रीमतीजी की कंघी-पट्टी का सामान उन्हें मुंहमांगा मिलता रहता है। 'कुछ भी करें, हमें इससे क्या!' यह मनोवृत्ति शत-प्रतिशत नहीं तो नब्बे प्रतिशत स्त्रियों की तो

अवश्य होती है। घर का खर्च चलना चाहिए, फिर भले कुछ हो, यही बातें हर घर की गृहिणी से सुनने में आती हैं।

किन्तु, यह लापरवाही तभी तक रहती है जब तक पतिदेव की आमदनी का कोई अन्त नहीं दीखता—धन की वर्षा आकाश से पानी की वर्षा की तरह होती रहती है, पतिदेव की जेबें सौ-सौ के नोटों से भरी हैं, श्रीमतीजी को चेक-बुक दी हुई है, मनचाही रकम बैंक में परवाना भेजकर निकाल सकती हैं। पतिदेव बाहर से डाका डालकर धन लाते हैं या किसी शरीफ का गला काटकर —इसकी चिन्ता पत्नी को नहीं होती। हमारे समाज में ऐसे धनियों की कमी नहीं है। फिर भी उनकी पूजा होती है। पत्नी भी इस धनवर्षक प्रभु की पूजा करे तो स्वाभाविक ही है।

किन्तु ऐसे धनकुबेर कितने हैं ? अधिकांश संख्या तो ऐसे ही लोगों की है जो रोज़ कुआं खोदकर अपनी प्यास बुझाते हैं। मैं उन्हींकी बात कहता हूं। ऐसे युवकों की पत्नियां अपने पति के व्यवसाय से उदासीन नहीं रह सकतीं। उन्हें जानना ही होगा कि उनका आदमी सुबह से शाम तक पसीना बहाकर घरके खर्चों के लिए किस रीति से धन जुटाता है। उस व्यवसाय से जितना पति को प्रेम है उतना ही पत्नी को रखना होगा।

मैं ऐसे घरों को जानता हूं जहां पति के व्यवसाय से पत्नी को उदासीनता ही नहीं, नफरत भी है। फिर भी पत्नी पति से प्रगाढ़ प्रेम होने का दावा भरती है। कान्ता का पति रामनाथ अध्यापक है। अध्यापन में पर्याप्त कमाई नहीं होती। घर के खर्चों में तंगी होती है। कान्ता ने रामनाथ से कई बार कहा कि तुम अध्यापन-कार्य छोड़कर बीमे की दलाली का काम शुरू कर दो। कान्ता के चाचा एक बीमा कम्पनी के दफ्तर

में ऊंचे श्रोहदे पर हैं। दो हज़ार रुपया पैदा कर लेते हैं। उन्होंने भी कान्ता को सलाह दी थी कि रामनाथ चाहें तो दलाली के काम में पड़ जाएं। पांच-छह सौ तो शुरू में ही हो जाएंगे। कान्ता ने कई बार कहा—विनयपूर्वक भी श्रौर श्राग्रहपूर्वक भी—किन्तु रामनाथ को श्रध्यापन-कार्य से प्रेम है। उसे श्राशा है कि वह शीघ्र ही कालेज में प्रोफेसर हो जाएगा। बचपन से उसने प्रोफेसर होने के स्वप्न लिए हैं। जिस संस्था में पढ़ाता है, उसे जीवन-दान देने का प्रण किया हुश्रा है। प्रण तो उसने भावुकता के बहाव में कर लिया था, लेकिन श्रब उसे सचमुच उस संस्था से प्रेम हो गया है। पिछले दस वर्षों में वह वहां के पत्ते-पत्ते से परिचित हो गया है। विद्यार्थी भी उसे प्रेम करने लगे हैं, इसलिए वह उस संस्था को छोड़ने को तैयार नहीं होता।

कान्ता उसके इस श्राग्रह को दुराग्रह समझती है। उसकी युक्ति है, "श्राखिर रोज़गार पैसे के लिए किया जाता है। जिसमें भी ज़्यादा पैसा मिले वह कर लो।" कान्ता जब यह कहती है तो रामनाथ का मन पिछली बातों को याद करने लगता है। मस्तिष्क में यह सन्देह घूमने लगता है, 'क्या सचमुच रोज़गार पैसे के लिए ही किए जाते हैं ?'

यदि ऐसा ही है तो सब लोग एक ही रोज़गार क्यों नहीं कर लेते जिसमें श्रधिक पैसा मिलता है ? काम-काजों में इतनी विविधता क्यों है ? काम-काज चुनते हुए रुचि का श्रौर लोक-कल्याण का ध्यान क्यों रखा जाता है ?

धन-संग्रह ही प्रत्येक गृहस्थ का परम लक्ष्य हो जाए तो क्या यह सच है कि लोक-हित के कामों में लगन रखने वाले को शादी नहीं करनी चाहिए ? कवियों, लेखकों, वैज्ञानिकों श्रौर श्रल्प

आय वालों को स्त्री से प्रेम करने या स्त्री का चिंतन करने का अधिकार नहीं है ? उसका मन विचित्र कल्पनाएं करने लगता है—'मैंने शादी करके भूल की, मुझे शादी नहीं करनी चाहिए थी, मुझे घर बसाने का अधिकार नहीं था।' इसी तरह के विचारों से उसका मस्तिष्क घूमने लगता है। पत्नी के सामने जाने में भी उसे संकोच होता है। उसने शादी करके अपराध किया है, पत्नी को बच्चों का भार देकर अपराध किया है; ऐसे ही कितने ही अपराधों की कल्पना से वह आक्रान्त हो जाता है। परिणाम यह होता है कि अध्यापकी से भी मन उचट गया और बीमे की दलाली तो हुई ही नहीं।

मेरे एक मित्र कवि थे। उनका विचार था कि कविता से भी रोज़गार चलाया जा सकता है। वे गीतकार थे। गीतकारों ने अच्छा धन कमाया है। वे भी कमा सकते थे। लेकिन उनकी पत्नी इतनी प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं थी। कवि महोदय जब कविता की तरंग में बह रहे होते, तो वह उन्हें खाली बैठा देख बाज़ार से शाक-भाजी लेने भेज देती। जिन कागज़ों पर उनकी कविता लिखी होती थी, उन्हें हवा में उड़ता देखकर बटोर लेती तो रसोई में अंगीठी भभकाने के काम लाती थी। नतीजा यह हुआ कि कवि महोदय को वैद्यक की दुकान खोलनी पड़ी। वहां भी नुस्खों की जगह कागज़ के पुर्ज़ों पर गीत लिखे जाते थे और मरीज़ों के जमघट की जगह शाम को कवि-सम्मेलन जमता था। अब भी कभी उनकी कोई कविता भूली-भटकी याद आ जाती है तो रोना आता है। जो रत्न राजमुकुट की शोभा बनना था, वह धूल में मिल गया है।

क्या घर के खर्चों की खातिर ही तुम्हें पति के व्यवसाय में

दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिए? क्या इससे अधिक तुम्हें उनके जीवन-व्यवसाय में कोई रुचि नहीं? तुम उनकी जीवन-संगिनी हो। 'घरवाली' गृह-संचालिका नहीं। उनके व्यावसायिक जीवन से उदासीन रहकर तुम उनके आधे जीवन से अलग रहती हो। उसमें वे बिलकुल अकेलापन अनुभव करते हैं। क्या उस जीवन की कठिनाइयों में भाग लेने वाले किसी दूसरे साथी की तलाश करनी होगी उन्हें?

यह भी तुम्हारा ही हिस्सा है। जब वे थके-हारे कचहरी से आए तो जलपान के बाद उनके पास बैठो। कचहरी की कई बातें ऐसी होंगी जिन्हें कहकर वे दिल हल्का करना चाहते हैं। कई दिलचस्प कहानियां उनके मन में घूम रही हैं। उन्हें अवसर दो कि वे खुले दिल से सब बातें सुनाएं। तुम मन से सुनोगी तो वे भी मन से सुनाएंगे। तुम उनसे प्रेम करती हो न? जिससे प्रेम करती हो उसकी हर बात अच्छी लगती है। तुम्हें बड़ा आनन्द आएगा उनकी बातों में। नई-नई बातें सुनने को मिलेंगी। उपन्यास से भी अधिक मनोरंजक किस्से सुन सकोगी।

कई बार वे मन में कोई उलझन लेकर आएंगे; कोई ऐसी समस्या—जिसका हल न सूझता हो। तुम उन्हें उसके सुलझाने में सहायता देना। अकेला मस्तिष्क कई बार एक ही आवर्त्त में चक्कर लगाता रहता है। उसी प्रश्न का दूसरा पहलू उनके दिमाग में नहीं आता। तुम तो स्वतन्त्र रूप से सोचोगी। सम्भव है, तुम उस समस्या को पहली सूझ में ही हल कर दो। उस समय वे तुम्हारा उपकार मानेंगे। तुम्हें भी कुछ उपयोगी काम करने की आत्मतुष्टि मिलेगी। तुम्हारा प्रेम स्थिर आधार पर जमता जाएगा। उसकी नींव मज़बूत होती जाएगी।

पतिदेव से उनकी बातें सुनते हुए कानों से ज़्यादा काम लेना, जीभ से कम। सुनना अधिक, कहना कम। जितना वे सुनाएं उतना ही सुनना। व्यर्थ के कौतूहल दिखलाकर परेशान न करना। बिना मांगे सलाह भी न देना। यह जतलाने की भी चेष्टा न करना कि तुम उनसे अच्छी वकालत कर सकती हो। उनकी गलतियां निकालने के प्रलोभन में न पड़ना। 'आप पूरी तरह केस की छान-बीन नहीं करते', 'आपको मुवक्किलों से पहले ही फीस रखवा लेनी चाहिए', 'आपका मुन्शी बहुत सुस्त है' आदि बातें उनको अच्छी नहीं लगेंगी।

कुछ स्त्रियां या तो दखल देती ही नहीं और देती हैं तो इतना कि पति की गुरु बन जाती हैं। मेरे पहचान वाले एक घर में पत्नी स्वयं समय-असमय दफ्तर में चली जाती है और काम करने वालों की त्रुटियां निकालने लगती है। और थोड़ी-सी भी त्रुटि पर कार्यकर्ता को नौकरी से अलहदा करने का हठ ठान लेती है। उसका पति पिछले पचीस साल से प्रेस चला रहा है। जिस मशीन-मैन को उसने पचीस साल से रखा हुआ है, उसे उनकी पत्नी एक चुटकी में अलहदा करने का आग्रह करती है।

अखबार के सम्पादक से पत्नी की नहीं बनती, क्योंकि वह ज़रा स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है। उसने एक बार उनकी घरेलू खबर को अखबार में छापने से इन्कार कर दिया था। वह समाचारपत्र को केवल सार्वजनिक समाचारों के प्रकाशन का माध्यम समझता है। अखबार के मालिक का भी यही विचार है। किन्तु पत्नी साहिबा इसे वैयक्तिक सम्पत्ति मानती हैं। इस मतभेद का परिणाम यह हुआ कि पन्द्रह वर्ष के अनुभवी संपादक को अपमानपूर्वक निकल जाना पड़ा।

पति के व्यावसायिक जीवन में पत्नी को सीधा दखल कभी नहीं देना चाहिए। किन्तु उसकी प्रधानता हर समय उसके मस्तिष्क में रहनी चाहिए। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था उसकी व्यावसायिक सुविधाओं को दृष्टि में रखकर होनी चाहिए। व्यवसाय के लिए पति यदि शहर से बाहर जाना चाहता है तो जाने दो। उसकी उन्नति में बाधक न बनो।

मैं एक युवक को जानता हूं, जिसका गृहस्थ-जीवन केवल इसलिए दुखी बन गया कि पत्नी ने उसे घर से बाहर जाने नहीं दिया। युवक को विश्वास था कि उसका प्रवास उसकी उन्नति का कारण होगा। किन्तु पत्नी अकेली रहने को तैयार नहीं थी। युवक पत्नी की बात मान गया, किन्तु जब भी वह अपने ऊंची जगहों पर पहुंचे साथियों को देखता है तो पत्नी को कोसता है। पुरुष को अपनी प्रतिष्ठा से प्रेम होता है। उसकी सामाजिक स्थिति से भी उसकी सफलता का माप किया जाता है। पत्नी यदि उसकी उन्नति में बाधक हो जाए तो वह कभी दिल से क्षमा नहीं करेगा। मैं चाहता हूं कि तुमपर यह कलक कभी न आए।

सबसे अच्छा तो यह है कि तुम अपने को पति के इस घर से बाहर के जीवन की भी संगिनी बना सको। इसमें कुछ अनोखा-पन नहीं है। किसान औरतें खेती में पुरुष का हाथ बटाती हैं। हाथ का काम करने वाले मज़दूर लोगों की स्त्रियां पुरुषों को उनके काम में पूरा सहयोग देती हैं, जब तक स्त्रियां अपने घर के लिए गृह-स्वामी के साथ मिलकर काम करती हैं तब तक स्त्रियों को धनो-पार्जन करने के लिए बाहर जाने का प्रश्न ही नहीं होता। नूरजहां और क्लियोपैट्रा यदि साम्राज्यों के संचालन में अपने सम्राटों की सहकारिणी हो सकती थीं तो छोटे-छोटे व्यवसायों में स्त्रियों की

साझेदारी अक्रियात्मक कैसे हो सकती है ?

व्यावसायिक जीवन साझेदारी का जीवन है। जितना मेल-जोल बढ़ता है उतनी ही व्यवसाय को तरक्की मिलती है। इस मेल-जोल में कुछ ऐसे भी संगी मिल जाते हैं जो तुम्हारे पति के मित्र बन जाते हैं। उनका घर में आना-जाना शुरू हो जाता है। पति के कुछ पुराने जीवन के भी मित्र होते हैं। उन मित्रों का भी तुम्हारे पति पर कुछ अधिकार है। पति के मित्र तुम्हारे भी मित्र नहीं तो हितैषी अवश्य हैं। उनके मन में तुम्हारे लिए आदर ही होगा।

उनका सम्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है। प्रायः होता यह है कि पत्नियां इन पुराने मित्रों को बड़े सन्देह की दृष्टि से देखती हैं। उनसे विमुख करने के लिए पति को तरह-तरह की बातें कहती रहती हैं।

"जाने कैसे-कैसे मित्र बना रखे हैं तुमने, इन्हें कृपा करके घर तो लाना नहीं। बाहर ही मिल लिया करो इनसे।"

इन बातों से तुम्हारा पति प्रसन्न नहीं होता। कभी-कभी बातचीत में कलह होने पर पत्नी कह देती है—

"मालूम होता है तुम्हारी संगति अच्छी नहीं। तुम ये बातें अपने मित्रों से सीखते हो। तुम्हारे मित्र अच्छे नहीं है। उनसे दूर ही रहा करो।"

घर आने में कभी देर हो जाए तो वह कह उठती है—

"फिर उस शराबी दोस्त के चले गए होंगे। क्या जाने कभी उसके साथ बैठकर पीने भी लगो।"

मेरे पहचान का एक अमीर आदमी है, रामनाथ। उसके पास लाखों की जायदाद है। वह राजसी ठाट-बाट से रहता है। उसकी

पत्नी को यही शिकायत है कि उसके बहुत-से मित्र गरीब हैं। उसके मित्रों में से एक है 'कवि'। रामनाथ को कविता से प्रेम है। वह स्वयं भी कविता करता है। कवि-सम्मेलनों में भाग भी लेता है। इसलिए 'कवि'-समुदाय से उसकी जान-पहचान है। पत्नी को इन कवियों से चिढ़ है। कवि महोदय जब कविता सुनाने लगते हैं तो पत्नी किसी न किसी बहाने अपने पति को अन्दर बुला लेती है और कहती है, "अब तो इसे विदा करो मेहरबानी करके। मेरे तो सिरदर्द होने लगा।"

उनके दूसरे मित्र हैं शतरंज के खिलाड़ी। इनका कोई दूसरा धन्धा ही नहीं। शतरंज ही खेलते हैं। घरबार भी नहीं है। रामनाथ ने इन्हें घर पर ही बसा रखा है। पत्नी को उसके नाम से बुखार आता है। बहुत रोकने पर भी शतरंज के दांव चलते रहे तो उसने शतरंज के मोहरे कूड़े-कचरे की बाल्टी में डाल दिए। आखिर इन्हें बोरिया-बिस्तर समेटकर घर से जाना पड़ा। रामनाथ को पत्नी के उस व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया। उसने इसका बदला शतरंज की एक क्लब में शामिल होकर लिया। अब जब पत्नी पूछती है, "कहां देर लगी?" तो रामनाथ का यही उत्तर है, "शतरज खेलने क्लब में गया था।"

पत्नी को पति के मित्रों का आदर करना चाहिए। पति को चाहिए कि वह पत्नी की सहेलियों का मान करे। मैंने आज तक यह नहीं सुना कि कभी पति को पत्नी की सहेलियों का आना खटका हो। घर का जीवन मित्रों के आवागमन के बिना बड़ा नीरस हो जाता है। इसके द्वार मित्रों के लिए खुले रहने चाहिए। घर को एक किला मत बनाओ। इसकी दीवारें इतनी ऊंची नहीं होनी चाहिए कि बाहर की ताज़ी हवा घर में प्रवेश न कर सके।

साझेदारी अक्रियात्मक कैसे हो सकती है ?

व्यावसायिक जीवन साझेदारी का जीवन है। जितना मेल-जोल बढ़ता है उतनी ही व्यवसाय को तरक्की मिलती है। इस मेल-जोल में कुछ ऐसे भी संगी मिल जाते हैं जो तुम्हारे पति के मित्र बन जाते हैं। उनका घर में आना-जाना शुरू हो जाता है। पति के कुछ पुराने जीवन के भी मित्र होते हैं। उन मित्रों का भी तुम्हारे पति पर कुछ अधिकार है। पति के मित्र तुम्हारे भी मित्र नहीं तो हितैषी अवश्य हैं। उनके मन में तुम्हारे लिए आदर ही होगा।

उनका सम्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है। प्रायः होता यह है कि पत्नियां इन पुराने मित्रों को बड़े सन्देह की दृष्टि से देखती हैं। उनसे विमुख करने के लिए पति को तरह-तरह की बातें कहती रहती हैं।

"जाने कैसे-कैसे मित्र बना रखे हैं तुमने, इन्हें कृपा करके घर तो लाना नहीं। बाहर ही मिल लिया करो इनसे।"

इन बातों से तुम्हारा पति प्रसन्न नहीं होता। कभी-कभी बातचीत में कलह होने पर पत्नी कह देती है—

"मालूम होता है तुम्हारी संगति अच्छी नहीं। तुम ये बातें अपने मित्रों से सीखते हो। तुम्हारे मित्र अच्छे नहीं है। उनसे दूर ही रहा करो।"

घर आने में कभी देर हो जाए तो वह कह उठती है—

"फिर उस शराबी दोस्त के चले गए होंगे। क्या जाने कभी उसके साथ बैठकर पीने भी लगो।"

मेरे पहचान का एक अमीर आदमी है, रामनाथ। उसके पास लाखों की जायदाद है। वह राजसी ठाट-बाट से रहता है। उसकी

पत्नी को यही शिकायत है कि उसके बहुत-से मित्र गरीब हैं। उसके मित्रों में से एक है 'कवि'। रामनाथ को कविता से प्रेम है। वह स्वयं भी कविता करता है। कवि-सम्मेलनों में भाग भी लेता है। इसलिए 'कवि'-समुदाय से उसकी जान-पहचान है। पत्नी को इन कवियों से चिढ़ है। कवि महोदय जब कविता सुनाने लगते हैं तो पत्नी किसी न किसी बहाने अपने पति को अन्दर बुला लेती है और कहती है, "अब तो इसे विदा करो मेहरबानी करके। मेरे तो सिरदर्द होने लगा।"

उनके दूसरे मित्र हैं शतरंज के खिलाड़ी। इनका कोई दूसरा धन्धा ही नहीं। शतरंज ही खेलते हैं। घरबार भी नहीं है। रामनाथ ने इन्हें घर पर ही बसा रखा है। पत्नी को उसके नाम से बुखार आता है। बहुत रोकने पर भी शतरंज के दांव चलते रहे तो उसने शतरंज के मोहरे कूड़े-कचरे की बाल्टी में डाल दिए। आखिर इन्हें बोरिया-बिस्तर समेटकर घर से जाना पड़ा। रामनाथ को पत्नी के उस व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया। उसने इसका बदला शतरंज की एक क्लब में शामिल होकर लिया। अब जब पत्नी पूछती है, "कहां देर लगी?" तो रामनाथ का यही उत्तर है, "शतरज खेलने क्लब में गया था।"

पत्नी को पति के मित्रों का आदर करना चाहिए। पति को चाहिए कि वह पत्नी की सहेलियों का मान करे। मैंने आज तक यह नहीं सुना कि कभी पति को पत्नी की सहेलियों का आना खटका हो। घर का जीवन मित्रों के आवागमन के बिना बड़ा नीरस हो जाता है। इसके द्वार मित्रों के लिए खुले रहने चाहिए। घर को एक किला मत बनाओ। इसकी दीवारें इतनी ऊंची नहीं होनी चाहिए कि बाहर की ताज़ी हवा घर में प्रवेश न कर सके।

पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों को फिर से ताज़ा करने के लिए भी उन्हें मित्रों से मेल-जोल बढ़ाना चाहिए। पति के मित्र भी परिवार का अंग बन जाते हैं। घर का जीवन भी पति-पत्नी के ही एकान्त-मिलन से नहीं निभता। यदि दोनों अकेले ही रहेंगे, किसी अन्य से खुलकर मिलेंगे-जुलेंगे नहीं, तो थोड़े दिन बाद दोनों एक-दूसरे से ऊब जाएंगे। बातों में विविधता नहीं रहेगी। उनकी बातों का खज़ाना खत्म हो जाएगा। अपने पुराने संस्मरणों की आत्मकथाएं सौ-सौ बार दुहराई जा चुकी होंगी। विचार-विनिमय भी सैकड़ों दफा एक ही जैसा हो चुका होगा। बात वहां चलती है जहां कोई नयापन आने की आशा हो।

यह नवीनता मित्रों के मेल-जोल से ही आती है। गृह-जीवन भी केवल पति-पत्नी का प्रेम-मिलन नहीं बल्कि सामाजिक जीवन का ही अंग है। उस जीवन में मित्रों की भी साझेदारी है। अच्छे मित्रों की जितनी भी अधिकता होगी—पारिवारिक सुख उतना ही बढ़ेगा।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

ईर्ष्या : स्त्री-चरित्र

पत्र | २०

As a moth gnaws a garment so doth envy consume a man.
जिस रीति से कीड़ा वस्त्र को खाता है, उसी रीति से ईर्ष्या मनुष्य को खा जाती है।

In jealousy there is more self-love than love.
ईर्ष्या के मूल में प्रेम से अधिक स्वार्थ होता है।

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि कुछ दिन पहले तुम 'ताज' में अपने पति के साथ खाना खाने गई थीं; वहां तुम्हारे टेबल के पास एक सुन्दर स्त्री किसीके साथ बैठी थी। वह सचमुच सुन्दर थी। तुम्हारे पति ने उसकी ओर देखा और देखते रह गए। तुमने पूछा—

'उसे ऐसे क्यों देखते हो जी ?'

'कैसे भला ?'

'जैसे तुम विवाह से पहले मुझे देखा करते थे।'

तुम्हारे पतिदेव यह सुनकर खिलखिला पड़े। लेकिन तुम उदास हो गईं।

इसके आगे अपनी मनोवस्था का चित्रण तुमने नहीं किया।

वह काम मैं किए देता हूं। तुमने सोचा होगा, 'मेरे पति का मन मुझसे फिर गया है। वे दूसरी स्त्री के रूप पर आसक्त हो गए हैं। क्या जाने वह उनकी पूर्व-परिचिता हो। शायद छिप-छिपकर उससे मिलते भी हों। वह स्त्री अवश्य दुराचारिणी है। उसने मेरे पति के मन पर जादू कर दिया है। अब क्या होगा? हमारे प्रेम पर कलंक लग गया। मेरा जीवन डावांडोल हो गया। मैं ठगी गई। पुरुष ऐसे ही होते हैं। उनका प्रेम धोखा होता है। स्त्रियां उनके दिल-बहलाव का खिलौना-मात्र होती हैं। मेरा इस घर में क्या है! मैं अपने मैके चली जाऊंगी। उनके मन में जो आए करें।'

कुछ ऐसी ही दुश्चिन्ताओं में तुमने रात काटी होगी। शायद आंखों से पानी भी टपकाया होगा। पतिदेव गाढ़ी नींद में सो रहे होंगे। वे तुम्हारी सिसकियां नहीं सुन सके होंगे। सुबह तुम्हारी आंखें लाल होकर सूज गई होंगी। पतिदेव ने पूछा होगा—

'यह क्या हुआ?'

तुमने कहा होगा—

'तुम्हारी बला से, तुम्हें क्या?'

मुझे आश्चर्य है, इतनी समझदार होकर भी तुम कई बार इतनी मूर्ख कैसे बन जाती हो! सुन्दरता को सराहना पाप नहीं। तुम्हारे पति ने जब पहले-पहल तुम्हें देखा था तो तुम्हारे विशुद्ध सौन्दर्य की ही सराहना की थी उन्होंने। उन नज़रों में वासना तो नहीं थी। आज भी उन्होंने वासना-रहित दृष्टि से देखा—यह तो तुम स्वीकार करती हो। फिर चिन्तित क्यों होती हो? पति के चरित्र पर इतना सन्देह क्यों करती हो कि वे हर स्त्री के सौंदर्य का भोग करना चाहेंगे।

हम लोग अब उस युग में नहीं हैं जब स्त्रियां अन्त:पुरों में कैद रहती थीं। पुरुषों की दृष्टि से उन्हें दूर रखा जाता था। तब पुरुष केवल एक ही स्त्री के सम्पर्क में आता था—अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसीसे बात करने का उसका अधिकार नहीं था। अब तो वह युग है कि स्त्रियां पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलती हैं ; खेल के मैदान में पुरुषों के समान दौड़ती-भागती हैं; आफिसों में काम करती हैं; फौज में भर्ती होती हैं—स्वतन्त्र रूप से सब कामों में भाग लेती हैं।

फिर भी, यह बात सच है कि पत्नी के मन में पति के विचलित होने की आशंका हर समय रहती है। वह चाहती है कि मेरे पति के जीवन में कोई स्त्री किसी भी रूप से सम्बद्ध न हो। स्त्रियों का अन्य स्त्रियों के प्रति यह ईर्ष्याभाव बड़ा गहरा है। वे पति पर अपना ही स्वत्व चाहती हैं। पति के अनुराग को एक फीसदी भी वे दूसरी स्त्री के मन में नहीं आने देना चाहतीं। वह स्त्री भले ही उसके पति की माता हो, बहिन हो, मित्र हो या यहां तक कि उसकी अपनी लड़की ही क्यों न हो।

राजेन्द्र मेरा मित्र है। उसकी एक बात सुनाता हूं। उसकी पत्नी विमला अपने पिता के घर गई हुई थी। राजेन्द्र के पड़ोस में ही उसका मित्र शरत् रहता था। शरत् के आग्रह पर राजेन्द्र ने उसके घर भोजन करना शुरू कर दिया। दस दिन की ही बात थी। शरत् की पत्नी को इसमें विशेष कष्ट नहीं हुआ। उसने आग्रह किया कि वह घर पर ही खाना खाया करें। दुर्भाग्य से शरत् की पत्नी सुन्दर थी। विमला जब दस दिन के बाद मायके से आई तो उसे राजेन्द्र का शरत् की सुन्दर पत्नी के हाथों खाना खाने का समाचार बहुत बुरा लगा। उसने अपने पति से इसकी

चर्चा की। पति ने निर्दोष भाव से कह दिया, "शरत् की पत्नी का भी आग्रह था कि मैं वहीं खाना खा लूं।" यह सुनना था कि विमला ने फोन उठाकर शरत् की पत्नी को सुनाना शुरू कर दिया—

"तू मेरे पति पर डोरे डालती है। सुन्दरता का इतना घमंड है तो स्टेज पर क्यों नहीं चली जाती? अपने आदमी से ही क्या तृप्ति नहीं मिलती तुझे जो दूसरे घरों की ओर झांकती फिरती है?"

राजेन्द्र यह सब कुछ सुन रहा था। उसने मित्र-पत्नी का यह अकारण अपमान न सहकर विमला के मुख पर तमाचा जड़ दिया। टेलीफोन झटककर छीन लिया। दो मिनट में यह सब नाटक हो गया।

मैं ऐसी कई पत्नियों को जानता हूं जो सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर जाकर खेल-तमाशा नहीं देखतीं--पति की चौकी-दारी ही करती हैं। पतिदेव की आंखें खेल की ओर रहती हैं और पत्नी की आंखें पति की आंख पर रहती हैं। वे यही ताड़ती रहती हैं कि कहीं उनकी दृष्टि पास में बैठी सुन्दर लड़की पर तो नहीं जम गई।

दफ्तर से लौटने में देर होने के साथ पत्नी की दुश्चिन्ताओं का घटाटोप सघन होता जाता है। वह इसी परिगणना में व्यस्त हो जाती है कि आज किसी मित्र की पत्नी से बात करने ठहर गए होंगे। बारी-बारी उसे अपनी पहचान की सब लड़कियों पर शक होने लगता है। सब स्त्रियां उसके पति के रास्ते में जाल बिछाकर उसे फंसाने की साज़िशें कर रही हैं—इन कल्पनाओं से उसका मन घिर जाता है। मित्रों के घर टेलीफोन से पूछना शुरू

हो जाता है। पति के घर न पहुंचने का ढिंढोरा शहर-भर में पिट जाता है। दूसरे दिन जो मिलता है यही कहता है, 'कल कहां चले गए थे—तुम्हारी पत्नी कल बड़ी परेशान थी।' बेचारा पति सबको सफाई पेश करते-करते थक जाता है।

कुछ पत्नियां इतनी सन्देहशील हो जाती हैं कि वे एक दिन के लिए भी पति को अकेला छोड़कर नहीं जातीं। माता-पिता बुलाने का आग्रह करेंगे, भाई की शादी का बुलावा आएगा, सहेलियों के निमंत्रण आएंगे, किन्तु पत्नी अपने आसन से नहीं हिलेगी। उसे भय है कि पति को अकेला छोड़ दिया तो अवश्य ही किसी जाल में फंस जाएगा। छाया की तरह वह सदा पति के संग-संग रहती है। उसे यथासम्भव एक दिन के लिए भी अकेला नहीं रहने देती। इतना अतिशय साहचर्य दोनों दिलों में अप्रीति के बीज बो देता है। वे भूल जाती हैं कि कुछ काल का वियोग प्रेमियों के मिलन को प्रिय बनाता है। कुछ दिन बिछुड़ने के बाद जो मिलते हैं वे नई ताज़गी से मिलते हैं। विरह की घड़ियां प्रेमियों की याद में बीतती हैं। विरह में साथी दोष भूल जाते हैं, कड़वाहट दूर हो जाती है। मिठास ही मिठास रह जाती है। पति-पत्नी में ऐसा अल्पकालिक विरह रसायन का काम करता है। संशयातुर पत्नियां इसका अवसर न देकर बहुत भूल करती हैं।

यह सन्देह कुछ मूर्ख पत्नियों को अतिशय शृंगारप्रिय भी बना देता है। उनके दिल में यह बात जम जाती है कि पतिदेव बनी-ठनी औरतों के अनुरागी हैं। उनके अनुराग पर एकाधिकार पाने के लिए क्यों न वे बन-ठनकर रहने लगें! बस—इतने में शृंगार की नई चीज़ों पर पैसे का अपव्यय शुरू हो गया। नकली

पलकों की सजावट से आंखों को कंटीला बनाने लगीं, होंठों की लाली गहरी हो गई, गालों पर गुलाल लगने लगा। वेश-भूषा में भी परिवर्तन किया गया। नारी के सम्मोहक अंगों का आकर्षण बढ़ाया गया। ब्लाउज़ का गला ज़रा नीचे तक खुला रखने की हिदायत हो गई। अखबार में नई नोकदार चोलियों का विज्ञापन पढ़ा था। आज तक परवाह न की थी। अब अंग्रज़ी दुकानों पर जाकर नई चोलिया खरीदी गईं। राजसी इत्रों की महंगी शीशियों पर पैसा बहाया गया।

घरों में बरसों के मितव्यय से पूंजी संचित की थी, जो विशेष अवसरों पर काम आती। पत्नी ने इसे ही विशेष अवसर समझा। पति-हृदय को जीतने से बड़ा अवसर और कौन-सा हो सकता था!

इन मूर्ख स्त्रियों को कौन समझाए कि बाहरी चमक-दमक के बल पर पति के हृदय को जीतना उसकी वासनाओं को भड़काना है, उसकी तृष्णा को और भी प्रबल बनाना है। यदि सचमुच उसमें यह तृष्णा जाग गई है तो वह नये-नये प्रलोभनों से और भी जागेगी, शान्त नहीं होगी। तुम भी उसे और भोगासक्त बनाने का यत्न करोगी तो वह तुम्हें भी केवल विलास की सामग्री मान लेगा और घर को विलास-भवन। इस आग में घर की शक्ति, घर की पवित्रता जलकर राख हो जाएगी। तुम्हारा जीवन हाहाकारमय हो जाएगा।

मैं ऐसे घरों को जानता हूं जो केवल मायाभवन बने हुए हैं। मेरा मित्र है अशोक। वह अनन्त धन का मालिक है। मैं जानता हूं, वह सच्चरित्र है। उसकी जान-पहचान बहुत-सी लड़कियों से या अपने मित्रों की पत्नियों से है। क्लब में वे उससे मिलती हैं।

फिर भी वह विषयी नहीं है। उसकी पत्नी को शक हो गया कि वह लड़कियों को मिलने का शौकीन है। पत्नी ने सोचा—क्यों न घर में ही शौक पूरा कर दिया जाए। आए दिन वह अपनी सहेलियों और पति के मित्र-परिवार को लड़कियों को घर में निमन्त्रित करने लगी। नाच-गाने की महफिलें जमने लगीं। कोई दिन ऐसा न जाता जब दस-बारह की दावत न होती। दावत के बाद अंग्रेज़ी नाच भी होता।

अब यह हाल है कि अशोक को दस-पांच की दावत के बिना खाने में रस नहीं आता। पहले पत्नी के पास बैठकर वह दिल की बातें तो कर लेता था—अब वह भी नहीं रहा। अशोक की पत्नी ने बढ़िया से बढ़िया मेक-अप भी किए, मुंह की सजावट के लिए डाक्टरों से भी राय ली, लेकिन अशोक का मन नहीं बदला।

मेरा विश्वास है कि अशोक के मन में पाप था ही नहीं। पत्नी के प्रति उसमें पहले भी प्रेम था और अब भी है। उसकी पत्नी ने उसे समझने में भूल की है। उसे समझना चाहिए था कि कई पुरुष बहुत हंसमुख होते हैं। लड़कियां उनके प्रति आकृष्ट होती हैं। वे भी उनसे हंसकर मिलते हैं। किन्तु इस हंसने में वे पत्नी के प्रेम को भुला नहीं देते। पत्नी का स्थान उनसे बहुत ऊंचा ही बना रहता है। हां—पत्नी के प्रति प्रेम-प्रदर्शन में वे आतुरता नहीं दिखाते। इसका कारण भी यह होता है कि वे इस बाह्य प्रदर्शन की विशेष आवश्यकता नहीं समझते। पति-पत्नी का प्रेम प्रशांत सागर की तरह गंभीर हो जाता है। उसमें पर्वत की चोटी से गिरने वाले झरने की तरह चंचलता नहीं रहती।

ऐसे चंचल प्रेम की उत्कट आकांक्षा भी कई बार पत्नियों को बेचैन बना देती है। उसे पाने के लिए वे निहायत ओछे उपायों

का जिस प्रकार सहारा लेती हैं, उससे उनका दर्जा पति की दृष्टि में बढ़ता नहीं, कम ही होता है।

साधारणतया पुरुष स्वाभिमानी होता है। समाज में वह अपनी प्रतिष्ठा बनाकर रखना चाहता है। भूल-चूक होने पर भी वह उसकी आंच अपने घर तक नहीं आने देना चाहता। अपनी स्त्री को वह इन क्षणिक भूलों की छाया से दूर ही रखने को उत्सुक रहता है। किसी स्त्री के लिए मन की निर्बलता होने पर ही वह अपनी प्रतिष्ठा को बिलकुल भुला नहीं देता। निर्बलता को निर्बलता ही मानता है और जिस स्त्री से उसे अपनी वासना कीतृप्ति मिलती है उसे भी नीचे दर्जे की ही समझता है। क्षणिक तृप्ति में वह घर के सुखों और पत्नी के मृदुल प्रेम को भूल नहीं जाता। पत्नी का स्थान उसके मन में और भी ऊंचा हो जाता है। बाहर के भोग-विलासों से थका-हारा जब वह घर की प्रेम-गंगा में स्नान करता है तो उसका मन घर की ओर फिर आकृष्ट हो जाता है। घर उसके लिए सदा तीर्थस्थान वना रहता है।

किन्तु इस बीच पति पर संशय करके या पति की एकाध भूल को पहाड़ बनाकर जो पत्नियां साक्षात् चंडी की मूर्तियां बन जाती हैं वे सदा के लिए घर की सुख-शांति का द्वार बन्द कर देती हैं। घर का द्वार पति के लिए या पत्नी के लिए कभी बन्द नहीं होना चाहिए। भूल पत्नी की हो या पति की, घर के दरवाज़े उनके लिए खुले हैं। घर का मतलब ही यह है कि उस स्थान पर भले-बुरे की जांच नहीं की जाती। माता की वात्सल्यमय गोदी की तरह घर का आंगन सबकी राह देखता है।

पत्नी को चाहिए कि वह बहुत शीघ्र अपने मन का संशय मिटा ले और इससे भी अच्छा है कि वह सन्देह को स्थान ही न दे।

इस संशयशीलता में हमारे सकीर्ण विचारों का भी बड़ा स्थान है उन विचारों का आधार है कि पुरुष और नारी का कोई भी सम्बन्ध वासना-रहित नहीं हो सकता। इन विचारों में पली पत्नियां बहुत जल्दी अपना धीरज खो बैठती हैं। समय आ गया है कि इस विष-भरे विचार को तिलांजलि दे दी जाए। पत्नी को चाहिए कि वह पति के दायरे के बाहर भी संस्कारी पुरुष से मेल-जोल बनाए। यह असभव है कि कालेज की शिक्षाप्राप्त लड़कियों का क़िसी भी पुरुष से परिचय न हो। घर की परिधि में भी उनका परिचय अनेक पुरुषों से होता है। किन्तु विवाह के बाद उनसे मिलना-जुलना बन्द हो जाता है। विवाह की दीवार उसकी आंखों के आगे से पति के अतिरिक्त सम्पूर्ण मनुष्य-जाति को ओझल कर देती है। घर की देहलीज़ तक ही उसके पैर जा सकते हैं और घर के आंगन का आकाश ही उसका विश्व-जगत् बन जाता है।

सतीत्व की रक्षा के लिए उसे इस रेखा के भीतर ही रहना पड़ता है। हम इसे सतीत्व की रेखा कह सकते हैं। उसके अन्दर केवल पति का ही प्रवेश है। पति जब चाहे उस रेखा को लांघकर बाहर जा सकता है। यह रेखा स्त्री की आत्मा पर चाबुक के निशान की तरह गड़ जाती है। गरम लोहे के दाग की निशानी की तरह वह उसके प्राणों में हर समय जलन पैदा किया करती है। यह सन्ताप ही अनेक बार पति के लिए सन्देह बनकर उसके हृदय से निकलता है। जब तक इस रेखा के निशान नहीं मिटेंगे, सन्देह दूर नहीं होगा। इस लोहे के पिंजड़े से बाहर आकर ही वह देख सकेगा कि पुरुष और नारी एक ही स्वच्छ आकाश में निर्मल भावनाओं के साथ एकसाथ उड़ सकते हैं। दोनों ज़हर के पुतले

या आग के शोले नहीं हैं। दोनों में शुद्ध सहानुभूति रह सकती है; मैत्री की भावना पनप सकती है; सौहार्द पल सकता है।

बाहर आकर वह यह भी देखेगी कि घर में पत्नी बनकर उसे जो स्थान प्राप्त है वह अन्य स्थानों से ऊंचा है। बच्चों की मां बनकर वह घर की ही नहीं, पति के हृदय की भी रानी बन गई है। अपने महत्त्व से पूर्णतया आश्वस्त होने के बाद उसकी आत्मा सन्देह के झोंकों से डगमगाएगी नहीं।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

कभी-कभी

'Absence makes the heart grow fonder.'
'वियोग मिलन की उत्सुकता को तीव्र कर देता है।'

प्रिय कमला,

गृहस्थ-जीवन का मार्ग केवल कर्तव्य-कंटकों से घिरा हुआ नहीं है। न ही वह फूलों की सेज है। उसमें कांटे भी हैं, फूल भी हैं। कांटों की गोद में ही तो फूल रहता है। कर्तव्यों की पूर्ति में ही आनन्द का निवास है, प्रेम की परितृप्ति है।

यह तो है जीवन का सीधा मार्ग। कभी-कभी सीधे लम्बे मार्ग पर चलते-चलते यात्रा में नीरसता आ जाती है। आंखें एक-सा नज़ारा देखते-देखते थक जाती हैं। तब मन करता है कि कुछ देर रास्ते से हटकर बैठ जाएं। क्योंकि मन विविधता चाहता है। यह विविधता मन की थकावट को दूर कर देती है—नया जीवन देती है।

पति-पत्नी को भी अपने जीवन में विविधता लाने के अवसरों का उपयोग करना चाहिए। कभी-कभी गृह-जीवन की दिनचर्या में अदल-बदल करते रहना चाहिए। कर्तव्यों की परिधि के बाहर स्वस्थ मनोरंजन के लिए भी कार्यक्रम बनाने चाहिए।

कभी-कभी घर में भोजन न करके होटल में खा लीजिए। इससे गृह-पत्नी को एक दिन की छुट्टी मिलेगी। पुरुषों को सात दिन में एक दिन पूर्ण विश्राम मिल जाता है, पत्नी को भी मिलना

चाहिए। इससे भोजन में भी विविधता मिलेगी।

कभी-कभी मनोरंजन के स्थानों पर भी जाना चाहिए। मनोरंजन भी जीवन का अंग है। निर्दोष आनन्द आत्मा का भोजन है। हंसने-खेलने से शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं बनता, आत्मिक परितोष भी होता है। पति-पत्नी जब साथ-साथ हंसेंगे-खेलेंगे तो उनकी निकटता बढ़ेगी। मिलकर गृहस्थ की गाड़ी खींचने के लिए ही दोनों को विधाता ने नहीं मिलाया, हंसने-खेलने के लिए भी मिलाया है। दु:ख में एक-दूसरे का दु:ख घटाने और खुशी में एक-दूसरे की खुशी बढ़ाने से ही दोनों सच्चे जीवन-साथी बनेंगे।

हमारे घरों में यह होता है कि पत्नी अपनी सहेलियों के साथ हंस-खेल लेती है और पति अपने मित्रों के साथ। पति-पत्नी का साथ केवल घर की चक्की चलाने में होता है। इसलिए यह साथ केवल दु:खदायी स्मृतियों से भर जाता है। सुख की घड़ियों के साथी दूसरे होते हैं। उनकी स्मृति हमें घर के बाहर ले जाती है।

दु:ख के समय ही काम आने के लिए पति-पत्नी एक-दूसरे का हाथ नहीं पकड़ते। दु:ख के समय भी हम उन्हीं साथियों की याद करते हैं जो सुख में हमारे साथ थे। उनकी याद ही हमें सुख देती है। उनकी निकटता ही हमें ढारस बंधाती है। इसलिए केवल दु:ख के भागीदार पति-पत्नी दु:ख को भी बंटा नहीं सकते, एक-दूसरे की सेवा कर सकते हैं; डाक्टर या नर्स बन सकेंगे, लेकिन मन की व्यथा को हल्का नहीं करेंगे।

दु:ख का आधार प्राय: मानसिक होता है। शरीर का दु:ख तो कभी-कभी आता है। केवल दु:ख के साथी के सामने तो व्यक्ति अपने मन की व्यथा को प्रकट भी नहीं करेगा। इसलिए अगर

तुम अपने पति के दुःख की साथिन बनना चाहो तो सुख की भी साझीदार बनो। उसके हंसने-खेलने में भी योग दो।

कभी-कभी दोनों को जुदा-जुदा मनोरंजनों में भी भाग लेना चाहिए। अल्पकालिक वियोग पुनर्मिलन को प्रगाढ़ बनाता है। अंग्रेज़ी की कहावत है, 'Too much familiarity breeds contempt.'—अतिशय निकटता घृणा के बीज बोती है। हर समय छाया की तरह साथ रहना दोनों की मानसिक स्वतन्त्रता का घातक हो जाता है। कई बार दैहिक दूरी दो दिलों को मिलाने में सहायक हो जाती है। जब तक वे दूर न हों तब तक दूरी का दर्द समझ नहीं आता, संयोग की इच्छा वैसी नहीं होती जैसी नये संयोग में थी।

इसलिए कभी-कभी प्रेम को नई स्फूर्ति देने के लिए भी वियोग की व्यथा का स्वागत करना उचित है। संस्कृत का एक श्लोक है—

"संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
संगे सैव यदैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥"

अर्थात् संगम और विरह में विरह ही अधिक अभीष्ट है। संगम में तो वह अकेली ही होती है, किन्तु विरह में तो सम्पूर्ण त्रिभुवन ही तन्मय हो जाता है। सब जगह उसीका रूप दिखाई देता है।

दाम्पत्य प्रेम में वियोग का बड़ा महत्त्व है। वियोग का मीठा दर्द प्रेमियों के हृदयों के लिए अमृत से भी अधिक मधुर होता है। साहित्य के सभी काव्य वियोग-रस के कारण ही इतने लोकप्रिय हुए हैं। दुःखान्त काव्य सुखान्त काव्यों से अधिक स्थायी प्रभाव डालते हैं।

पति-पत्नी के अनुराग को अमर रखने के लिए उनके सह-

वास में पर्याप्त अन्तर होना चाहिए। सतत साहचर्य प्रेम को नीरस बना देता है।

एक वर्ष में एक महीने के लिए दोनों को जुदा-जुदा रहने का कार्यक्रम बना लेना उचित है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

छोटी-छोटी बातें

पत्र | २२

'Small courtesies sweeten life, the great ennoble it.'
'छोटे-छोटे मधुर व्यवहार ही जीवन को सरस बनाते हैं...।'

प्रिय कमला,

कुछ छोटी-छोटी बातें हैं जिनका ध्यान रखो । विवाहित जीवन इन छोटी-छोटी बातों से ही कड़वा बनता है। इन्हें छोटा न समझो । उदाहरण के लिए कुछ नीचे लिखता हूं ।

हर पति अपनी पत्नी को सुन्दर रूप में देखना चाहता है— लेकिन सजधज की पूरी प्रक्रिया को नहीं देखना चाहता । यह प्रक्रिया देखने में रुचिकर नहीं होती; उसी तरह, जिस तरह कलाकार की अधूरी कृति कलाकृति नहीं होती। कोई कलाकार अपनी अधूरी रचना को दिखाना नहीं चाहता। इससे उसकी कला का मूल्य देखने वाले की दृष्टि में बहुत कम हो जाता है। पति इस स्वप्न में ही रहना चाहता है कि उसकी स्त्री स्वाभाविक रूप से ही सुन्दर है। इस स्वप्न को वह तोड़ना नहीं चाहता । उसके सामने 'मेक-अप' करोगी तो उसका सपना टूट जाएगा। वह समझने लगेगा कि तुम्हारा सौन्दर्य धोखा है, केवल रग-रोगन की माया है।

प्रायः सभी स्त्रियों को समय का अनुभव नहीं होता। घर से

बाहर जाने की तैयारी में तो यह अनुमान और भी गलत हो जाता है। 'अभी दो मिनट में तैयार हुई' कहकर वह दो घण्टे लगा देती है। बाहर जाने का समय सुबह से तय हो गया था। श्रृंगार में दो घण्टे लगते थे तो तैयारी भी दो घण्टे पहले से शुरू कर देनी चाहिए थी। लेकिन नहीं, तैयारी आधा घण्टे पहले ही शुरू होगी। पतिदेव पूछ रहे हैं, 'कितनी देर और है ?' बराबर उत्तर मिलता है, 'बस, दो मिनट और।' प्रतीक्षा का समय बड़ा लम्बा हो जाता है। पतिदेव थक जाते हैं, चिढ़ जाते हैं। कई बार तो बाहर जाने का प्रोग्राम भी छोड़ना पड़ता है। कई दफा यही बात होने के बाद पति निश्चय कर लेता है कि अब पत्नी के साथ बाहर जाने का नाम भी न लेगा। वह हारकर कह देता है, 'देखो जी ! तुम अपनी सहेलियों के साथ ही बाहर हो आया करो। मैं थका हुआ हूं।'

नई बहू जब घर में आती है तो कुछ दिन तक चुप रहती है, उसे बुलाने के लिए सब जी-जान से कोशिश करते हैं। लेकिन जब वह बोलने लगती है तो चुप कराना कठिन हो जाता है। पति के वापस आते ही वह नौकर की बातें, पड़ौसिन की कहानियां, अपने नाना-मामा-दादा की जीवन-कथाएं धाराप्रवाह सुनाना आरम्भ कर देती है। नौकर ने चोरी से दूध की मलाई उतार ली, वह सारा दिन बाहर सोता रहा, सब्ज़ी के पैसों में से दो आने हज़म कर गया, पड़ौसिन के घर अजीब तरह के लोग आते हैं, उसने अपना क़ूड़ा हमारे दरवाज़े के सामने फेंक दिया—आदि बातें एक के बाद एक शुरू हो जाती हैं। उन कहानियों में कुछ बुरा नहीं, आखिर अपने घर वालों की ही बातें होंगी। लेकिन रोज़ उन्हीं किस्सों को सुनते-सुनते पति के कान थक जाते

हैं। उसे अपनी बात कहने का तो मौका ही नहीं मिलता। सबके हित की बात के लिए भी समय नहीं मिलता। अच्छा तो यह है कि नित्य नई चर्चा हुआ करे। वह नहीं तो कम से कम पुरानी बातों का पुनर्वाचन तो न हो। पत्नियों को यह आदत छोड़ने का यत्न करना चाहिए।

घर की सुरक्षा का ध्यान रखना पत्नी का कर्तव्य है। किन्तु उठते-बैठते, घूमते-फिरते हर समय इस सुरक्षा की चिन्ता करना पागलपन है। एक दिन मेरे मित्र मेरे साथ समुद्र-स्नान के लिए गए। उनकी पत्नी भी साथ थीं। समुद्र की लहरों का मज़ा ले रहे थे। खूब हंसी-खेल चल रहा था। उसी समय अचानक मित्र-पत्नी का चेहरा फक पड़ गया। वे अपने पति से बड़ी चिंताग्रस्त मुद्रा में बोलीं—"हाय! अनर्थ हो गया।" हमने समझा शायद कोई मछली उन्हें काट गई है या कोई पत्थर का तेज़ टुकड़ा उनके पैर में लग गया है। मित्र ने चिन्तित भाव से पूछा—"क्या हुआ?"

"हम अपने घर की खिड़की खुली छोड़ आए हैं।"

"तो क्या हुआ? सीखें तो लगी हैं। कोई अन्दर तो जा नहीं सकता।"

"लेकिन बरसात आ गई तब?"

"आकाश में तो एक भी बादल नहीं है।"

"आते क्या देर लगती है—जल्दी चलो। कहीं आ गई तो कमरे का गालीचा भीग जाएगा। पिछली बार वह भीग गया था तो दो दिन सुखाने में लगे थे।"

परिणाम यह हुआ कि 'पिकनिक' का सारा प्रोग्राम छोड़-कर घर की खिड़की बन्द करने के लिए वापस आना पड़ा। थोड़ी-

सी बात को तूल देना बुरा है। घर की चिन्ता जब भूत बनकर सवार हो जाती है तो पत्नी का मन घर की परिधि में ही घूमा करता है। वह पति के किसी भी अन्य काम में साथ नहीं दे सकती।

प्रथम परिचय में ही स्त्रियां अपने घरेलू जीवन की झूठी-सच्ची बातें सुना डालती हैं। इनका प्रारम्भ प्रायः आसपास वालों की निन्दा से होता है। 'अमुक लड़की उस पुरुष से न जाने क्या-क्या बातें किया करती हैं', 'वह लड़का रोज़ उसके घर फलों की डाली लेकर आता है', 'उसे न जाने किस-किसकी चिट्ठियां आती हैं' आदि चरित्र-सम्बन्धी बातों में स्त्रियां बड़ी दिलचस्पी लेती हैं। जहां दो स्त्रियां बैठेंगी, इसी तरह की बातें शुरू कर देंगी। इन बातों को खूब मसालेदार बनाकर सुनाया जाता है। पराये घरों की निन्दा से प्रारम्भ होकर इन बातों का प्रसंग प्रायः अपने घरों से जुड़ जाता है। दो-चार दिन की भेंट के बाद स्त्रियां अपने पति, अपने देवर, अपनी ननद व जिठानी, देवरानी की पोल खोलना शुरू कर देती हैं। घरों में कलह तो हुआ ही करता है। दिल की जलन उनकी बदनामी करके ठंडी की जाती है। थोड़े दिन के बाद कोई अन्य आता है तो उसके सामने घर की और स्त्रियां उसकी पीठ-पीछे बदनामी फैलाती हैं। यह ज़हर चारों ओर फैल जाता है। याद रखो, दूसरे पर कीचड़ उछालने से अपने पर भी छींटे पड़ते हैं। परनिन्दा में आनन्द लेकर तुम अपने ही घर को हानि पहुंचाती हो।

इसी तरह कुछ और आदतें हैं जिनको छोड़ना श्रेयस्कर है। कुछ स्त्रियां यह प्रकट करने का यत्न करती रहती हैं कि सम्पूर्ण घर का भार उनके कन्धों पर है। स्वयं को महत्त्व देने की यह

धारणा उन्हें अपनी दृष्टि में अतिशय गर्वित और दूसरे की दृष्टि में बहुत लघु और उपहासास्पद बना देती है। अपने अचेतन मन में हीन भावना को छिपाए रखने वाली स्त्रियां ही इस तरह अपने को ठगने की कोशिश करती हैं।

कुछ स्त्रियों की आदत होती है कि वे बाहर सड़क पर चलते हुए अनावश्यक रूप से गरदन को अकड़ाकर चलती हैं। उन्हें यह भ्रम होता है कि सारी दुनिया की नज़रें उनपर केन्द्रित हो गई हैं। स्वयं को सौन्दर्य-सम्राज्ञी समझना और दुनिया को सौन्दर्य-लोलुप मानना भूल है। बाज़ार में सज-संवरकर निकलोगी तो लोग तुम्हें अवश्य देखेंगे। उनकी दृष्टि में आदर की अपेक्षा उपहास अधिक होगा; कौतूहल भी हो सकता है। दुनिया की नज़रों से बचना है तो दुनिया की उपेक्षा करना सीखो। अपने काम में व्यस्त रहो, अपनी राह चलते जाओ। दूसरे की नज़रों में अपने को परखना या दूसरों की सम्मतियां सुनना तुम्हारी परेशानी को बढ़ाएगा ही—घटाएगा नहीं। परेशान होकर तुम अपने पति को भी परेशान करोगी। मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूं जो राह-चलते लोगों से अपने पति को भिड़ा देती हैं। पति का ध्यान हर समय स्त्री के सम्मान को सुरक्षित रखने में ही रहता है। उसे यही चिन्ता रखनी पड़ती है कि कोई पुरुष उनकी स्त्री को कुत्सित दृष्टि से तो नहीं देख रहा।

पति के हर काम में दखल देना स्त्री की बुरी आदत है। पति से यह आशा भी न करो कि वह प्रतिदिन अपनी दिनचर्या तुम्हें सुनाएगा। अनावश्यक हस्तक्षेप करके तुम पति की परेशानियों को घटाती नहीं हो। बिना मांगे सलाह देना मूर्खों का काम है। ऐसी सलाह का कोई मूल्य नहीं होता। सलाह लेनी होगी तो पति

तुमसे स्वयं सलाह ले लेगा। बिना मांगे परामर्श देना और उस परामर्श के अनुसार ही पति से आचरण करने का आग्रह करना भारी मूर्खता है। साधारण आचरण-व्यवहार के ये नियम पति-पत्नी के जीवन में भी उसी तरह सत्य हैं जिस तरह अन्य साधारण व्यक्तियों के जीवन में।

आजकल कुछ स्त्रियां घर की नीरसता को भंग करने के लिए रेडियो का अखंड पाठ जारी रखती हैं। घर का सूनापन रेडियो से भंग नहीं हो सकता। वह तो पति-पत्नी के प्रेम-व्यवहार से ही भंग होगा। रेडियो से इतनी आशा रखना मूर्खता है। घर की निस्तब्धता बच्चों के आनन्द-किलोल से टूटनी चाहिए। रेडियो उनकी स्थानपूर्ति नहीं कर सकता।

पति को रोज़ अपने सपने सुनाना भी बुरी आदत है। मुझे मालूम हुआ है, कई स्त्रियां सुबह के नाश्ते के समय रोज़ अपने सपने सुनाती हैं। उन सपनों का विषय भी प्रायः यही होता है कि 'उनका पति पराई स्त्री से बातें कर रहा था।' स्त्री के मुख से प्रतिदिन एक ही बात सुनते-सुनते पति के कान पक जाते हैं। पत्नी भी विवश है। उसकी किसी और विषय में गति ही नहीं और रुचि भी नहीं। विविधता के लिए कभी-कभी घर के नौकर या पड़ोसिन के प्रेम-सम्बन्धों की चर्चा भी हो जाती है। किन्तु हर बात सैकड़ों बार दुहराई जा चुकी है। पत्नी को इस आदत से बचना चाहिए।

उसे इन बातों के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी रुचि लेनी चाहिए। सामाजिक कल्याण की चर्चा या साहित्यिक चर्चा में भी व्यसन रखना चाहिए। बिना अध्ययन या चिन्तन के कोई भी अच्छा साथी नहीं बन सकता। तुम्हारा पति शिक्षित है, तुम भी

शिक्षित हो। तुममें समरुचि हो सकती है, समान व्यसन भी हो सकता है। काव्य का व्यसन सबसे अच्छा है, पठन-पाठन का क्षेत्र केवल उपन्यासों तक सीमित नहीं है। अन्य विषयों का भी अध्ययन होना चाहिए। केवल मात्र अध्ययन से भी काम नहीं चलेगा। चिन्तन भी आवश्यक है। मनन व चिन्तन के बिना तुम्हारा अपना दृष्टिकोण नहीं बनेगा। जब तक तुम्हारा अपना दृष्टिकोण नहीं बनेगा तब तक तुम अपनी बात में जान नहीं डाल सकोगी। इसलिए चिन्तन और अध्ययन दोनों की आदत डालनी चाहिए।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

छोटी-छोटी शिकायतें

पत्र | २३

"A deaf husband and a blind wife are always a happy couple."

"सुनकर अनसुनी करने वाला पति और देखकर भी आंखें बन्द कर लेने वाली पत्नी का दाम्पत्य-सुख निःसन्देह सदा स्थायी रहता है।"

प्रिय कमला,

मैंने भी यही सोचा था कि विवाह के बाद तुम कुछ शिकायतें ज़रूर करोगी। उन्हींमें से एक यह है कि तुम्हारे पतिदेव कुछ प्रमादी हैं; स्वच्छता की बहुत परवाह नहीं करते; स्नान से कतराते हैं; मैल से स्वाभाविक अप्रीति नहीं है; बनाव-सिंगार से उन्हें अरुचि तो नहीं है किन्तु कभी-कभी रूखे बाल ही आफिस चले जाते हैं; बूट पर नित्य पालिश नहीं करते; दांत साफ करना भी कभी-कभी भूल जाते हैं; इत्र से उन्हें छींकें आती हैं; क्रीम से दूर भागते हैं; पाउडर की तमीज़ नहीं; नाखून काटने में भी अलसाते हैं।

शिकायतों का प्रथम पर्व इन्हीं प्रसंगों से प्रारम्भ होता है। मलिनता अक्षम्य दोष है। शिक्षा स्वच्छता सिखाती है। तुम्हारे पति भी शिक्षित हैं। उन्हें भी स्वच्छता से अवश्य प्रेम होगा। अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने का उत्साह प्रत्येक युवक में होता है। बाह्य उपकरणों की सहायता से आकर्षण पाने में किसी भी

आधुनिक युवक को आपत्ति नहीं होती। तुम्हारे पति के विचार भी आधुनिक हैं। मैं जानता हूं उन्हें बनाव-सिंगार से द्वेष नहीं है। लेकिन तुम्हारी शिकायतों में भी सचाई होगी। उन्हें निराधार नहीं मान सकता। कुछ देर तो विचित्र दुविधा में पड़ गया। दो विरोधी बातों का समन्वय कैसे करूं? निष्कारण तो कुछ भी नहीं होता। कल्पनाएं दौड़ाने लगा। आखिर तुम्हारे पतिदेव के प्रमाद का एक कारण सोचा। संभव है यही सच हो। मेरा अनुभव कहता है—यही सच होना चाहिए। वही लिखता हूं।

विवाह से पूर्व तुम्हारे पति भी शौकीन थे। स्वच्छता के पुजारी तो नहीं थे किन्तु स्वच्छता से प्रेम तो था ही उन्हें। अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने का उत्साह भी था। विवाह के बाद भी वह उत्साह कुछ दिन बना रहा। तुम्हारे सामने आकर्षक रूप में आने के लिए भी यह आवश्यक था। लेकिन, बाद में उनकी यह उमंग मंद पड़ गई। वे हतोत्साह हो गए।

उन्होंने देखा कि स्वच्छता का चरम प्रयत्न भी तुम्हारे संतोष का कारण नहीं बन रहा, तुम्हारी कसौटी पर पूरा नहीं उतर रहा। तुम उनकी सराहना करने के बजाय प्रतिदिन अधिकाधिक स्वच्छता की मांग करती गईं। और क्रियात्मक आदर्श पेश करने के लिए तुमने दिन-रात स्वच्छता का अखंड अनुष्ठान शुरू कर दिया। सफाई के लिए घर में हर समय उथल-पुथल होने लगी। एक आदमी स्नान-घर में कपड़े धो रहा है, दूसरा फर्श मांज रहा है, चौथा झाड़ू लगा रहा है। स्वयं लम्बा बांस लेकर छतों पर लगे मकड़ी के जाले बीन रही हो।

फिर यह मांग होने लगी—'चप्पल उतार दो, फर्श मैला हो जाएगा', 'तकिये पर सिर न दो, गिलाफ पर धब्बे पड़ जाएंगे,

'सोफे पर न बैठो, उसका कवर पुराना हो जाएगा'। बैठना-उठना मुश्किल हो गया। सब जगह स्वच्छता के सेवक अपने-अपने प्रयोग में लगे हुए हैं। कुर्सी पर बैठो तो क्षण-भर में कोई कुर्सी के पैर पोंछने आ जाता है, सोफे पर बैठो तो दूसरा उसके नीचे का गर्द झाड़ने आ जाता है।

तुम्हारे पतिदेव ने इस स्वच्छता-युद्ध में भाग लेने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु तुमसे आगे न बढ़ सका। तुमसे उसे नीचा ही देखना पड़ा। स्वच्छता के तुम्हारे आदर्शों तक वह नहीं पहुंच सका।

पुरुष का यह स्वभाव है कि वह जब किसी क्षेत्र की प्रतियोगिता में आगे न बढ़ सके तो क्षेत्र का परित्याग कर देता है। यहां तो फिर अपनी ही स्त्री से होड़ थी। हार खाकर वह इस युद्ध से उदासीन हो गया। यही उदासीनता उसके आलस्य को स्थायी बनाए हुए है। यह पराजय उसे सिर नहीं उठाने देती। अब वह पराजय को ही जीत बनाने की धुन में है; लापरवाही को गौरवान्वित करने की सोचता है।

तुम उसकी मनोदशा में परिवर्तन कर सकती थीं। तुम्हारा कौशल उसके उत्साह को बढ़ावा देकर और इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता बढ़ाने का प्रलोभन छोड़कर तुम उसे गौरवान्वित अनुभव होने देने का कार्य कर सकती थीं।

अब भी तुम उसे स्वच्छता के मार्ग पर ला सकती हो, आलोचना के बल पर नहीं, मौन प्रेरणा की सहायता से। अब तो यह होता है कि जब वे पुराना तौलिया लेकर ही स्नानगृह में जाने लगते हैं तो तुम नाक-मुंह सिकोड़कर कहती हो—

'कितना गन्दा तौलिया लिए हो! बदबू नहीं आएगी?'

यह कहती हुई तुम अपनी साड़ियों की तह लगाने में लीन हो जाती हो। पतिदेव को तौलिया बदलना भी था तो ज़िद से नहीं बदलते। कड़वी बात कहने के बजाय यदि तुम कोई साफ तौलिया उनके स्नान-घर में जाने से पहले ही वहां टांग दो और मैले को धुलवा दो, तो वे इस उपकार को भी मानेंगे और उन्हें स्वच्छता का अभ्यास भी होगा।

इसी तरह यदि तुम उनके नये कपड़ों को बटन लगाकर कपड़े बदलने से पहले तैयार करके यथास्थान रख दो तो तुम्हारी शिकायत खुद दूर हो जाए। ऐसा करते हुए एक बात का ख्याल रखना। अपने काम का ढिंढोरा मत पीटना, या तुरन्त उनसे प्रमाणपत्र लेने का यत्न नहीं करना। उनपर उपकार-भार बढ़ाने की नीयत से ऐसा करोगी तो वे उस भार को वहन करने की अपेक्षा मैले-कुचैले परन्तु हल्का रहना ही अच्छा समझेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी छोटी-छोटी आदतें होती हैं जिनका सुधार करने की कोशिश करना व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि पति की आदत है कि वह अपने सामान को इधर-उधर पड़ा रहने दे या कपड़ों की पूरी तह करके न रखे, तो इस आदत को दूर करने का निरन्तर उपदेश देते रहना भी पत्नी के लिए उचित नहीं होता।

पत्नी होने की हैसियत से तुम्हारा कार्य यही है कि तुम पति को यथासम्भव हर काम में सहयोग व सहायता दो। विवाह ने तुम्हें पति के सुधार का काम सुपुर्द नहीं किया है। पति की त्रुटियों को ढूंढ़कर उनकी आलोचना करोगी और उनको याद दिला-दिलाकर तंग करोगी तो पति का हृदय बहुत खिन्न हो जाएगा। तुम्हारा छिद्रान्वेषण पति के हृदय में तुम्हारे लिए अनुराग के

अंकुर पैदा नहीं करेगा, प्रेम की भावना नहीं बढ़ाएगा। इससे प्रेम की डोर कमज़ोर पड़ जाएगी।

ध्यान से देखा जाए तो तुम्हारे अन्दर भी कुछ ऐसी आदतें हैं जिनका सुधार करने की आवश्यकता है, पति यदि बार-बार उनकी याद दिलाए तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा।

वेशभूषा की सजावट रखना या न रखना भी आदत की बात है। यह आदत बड़ी कठिनाई से बदलती है। उसे बदलने का आग्रह करना कई बार कटुता पैदा कर देता है। तुम्हें चाहिए कि उनकी वेशभूषा-सम्बन्धी आदतों के प्रति लापरवाही का भाव रखो। अपनी रुचि का प्रकाश तुम नम्रता से कर सकती हो, लेकिन उसे पति द्वारा अपनाने का आग्रह मत करो।

पति को भी चाहिए कि वह पत्नी के शृंगार या केशविन्यास आदि को पसन्द करे तो उसकी प्रशंसा कर दे और पसन्द न करे तो दोषों को कौशल से प्रकट कर दे। लेकिन उसकी आलोचना न करे, किसी विशेष रीति को अपनाने का आग्रह न करे।

साधारणतया होता यही है कि जो पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं, वे पोशाक या सजावट का निश्चय करते हुए साथी की रुचि का ध्यान रखते हैं। वे व्यक्तिगत स्वच्छता और शालीनता की भी चिन्ता करते ही हैं। यह स्वाभाविक सहयोग की भावना ही दोनों में अनुकूलता लाने में पर्याप्त होती है। इससे अधिक का आग्रह कष्टप्रद होता है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

विवाह-विच्छेद की कल्पना — पत्र | २४

"Toleration is the best Religion."
—Victor Hugo.

"सहिष्णुता सर्वोच्च धर्म है ।"

प्रिय कमला,

तुम लिखती हो—

"हम दोनों में कई बार इतनी अनबन हो जाती है कि साथ रहना भारी लगने लगता है। आपने कहा था, 'विवाह-सम्बन्ध में विच्छेद की सम्भावना नहीं। न चाहते हुए भी दोनों को साथ रहना पड़ेगा।' इस आजीवन बन्धन से तो मौत ही अच्छी। छुटकारा तो मिलेगा।"

तुम्हारे पत्र के इन शब्दों को पढ़कर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। आजकल यह मुहावरा बहुत साधारण हो गया है कि 'बनेगी नहीं तो अलग हो जाएंगे।' इस बात को कुछ इस ढंग से कहा जाता है, मानो, उन्हें विवाह-बन्धन से छुटकारा पाने का बड़ा अच्छा उपाय मिल गया है। विवाह से पूर्व ही वे ऐसी बातें करने लगते हैं। इस बात से उन्हें बड़ा आश्वासन मिलता है।

यह बात दूसरे शब्दों में यह है कि 'कोई चिन्ता नहीं, यह काम न बना तो हम छोड़ देंगे।' कोई भी व्यवसायी व्यवसाय करने से पहले यह बात नहीं कहता कि कामयाबी न हुई तो दिवालिया हो जाएंगे। वह कार्य का प्रारम्भ इतने उत्साह से करता है कि विघ्न-भय से उसको बीच में ही छोड़ने का विचार ही उसके मन में नहीं

आता। सफलता का संकल्प उसके मन में इतना दृढ़ होता है कि असफलता की संभावना पर कान ही नहीं देता।

विवाह के प्रारम्भ में ही वर-वधू के मन में ऐसा ही दृढ़ संकल्प होना चाहिए। प्रारम्भ में ही निष्क्रमण-द्वार पर दृष्टि रखना प्रवेश के औचित्य को संदिग्ध कर देता है। यह विचारधारा प्रारम्भिक प्रयत्नों में ही शिथिलता पैदा कर देती है। ऐसा सोचना युद्ध के लिए प्रस्थान करने से पूर्व ही पराजय की तैयारी करना है। विजय-पराजय दोनों ही होते हैं—लेकिन प्रारम्भ में ही पराजय-काल की सामग्री एकत्र करना बालक के जन्म लेते ही उसकी चिता के लिए समिधाएं एकत्र करने के समान निन्दनीय काम है।

'विवाह-विच्छेद' न तो कोई नया वरदान है न ही यह नया अभिशाप है। हमारे विधि-विधान भी विच्छेद की आज्ञा देते थे। पति को तो विच्छेद की आवश्यकता ही नहीं थी। वह तो अकारण भी एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर सकता था। केवल उसे विवाह में पाए धन-दहेज को लौटाना पड़ता था। किन्तु पत्नी को भी विच्छेद का अधिकार था। पति के प्रवासी होने, राजद्रोही, पापी, खूनी या अधार्मिक होने तथा पुंस्त्वहीन होने पर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी। पति के संन्यासी होने, साधु होने या गृह-त्याग पर उसकी पत्नी सात मास प्रतीक्षा करने के बाद दूसरा विवाह कर सकती थी।

परिस्थितियों में भेद से इन विधानों में परिवर्तन भी हो सकता है। किन्तु, मेरी धारणा है कि विवाह-विच्छेद के उपाय से विवाहित जीवन का सुख पाने वाले पति-पत्नियों की संख्या बहुत कम है। अमरीका में आजकल एक-तिहाई विवाहों का अंत विच्छेद में होता है। जीवन-भर साथ रहने का प्रण करने के बाद

भी वे दो-एक साल बाद अलग हो जाते हैं।

किन्तु, विच्छिन्न पति-पत्नी का अनुभव यह बतलाता है कि उन्हें अपने विच्छेद पर बहुत पछतावा हुआ है। ऐसे पांच में से तीन वियुक्त दम्पती का तो यही अनुभव है। ब्रिटेन के एक जज ने राय दी थी कि ब्रिटेन में विवाह-विच्छेद के बाद पांच में से तीन जोड़े ज़रूर पुनः संयुक्त होने की इच्छा प्रकट करते हैं। उनका कथन होता है कि एक बार और मौका दिया जाए तो वे कभी विच्छेद के प्रलोभन में नहीं पड़ेंगे।

विच्छेद के लिए जो पति-पत्नी अदालत की शरण जाते हैं, वे विविध प्रकार की मानसिक निर्बलताओं के शिकार होते हैं। उनमें अमीर-गरीब, उदार-अनुदार, क्रूर-अक्रूर, स्वस्थ-बीमार सभी तरह के युगल आते हैं। किन्तु उनमें से बहुसंख्या प्रायः एक ही प्रकार के जोड़ों की होती है—वे हैं अपरिपक्व भावनाओं वाले जोड़े।

अपरिपक्व भावनाओं के व्यक्ति अदालत की शरण क्यों लेते हैं?

इसलिए कि विवाहित जीवन की समस्याओं को हल करने का सरलतम उपाय उन्हें—जो दुनिया में किसी भी संघर्ष में पूरा नहीं उतर सकते—विवाह-विच्छेद ही सूझता है। अपने विवाहित आनन्द के लिए प्रयत्न करना भी उनकी प्रमादी प्रकृति के विरुद्ध होता है। विच्छेद के प्रारम्भिक दिनों में तो उन्हें कुछ नवीनता दिखाई देती है। बिरादरी की बातचीत में भी रस आता है। लेकिन कुछ दिन बाद इस प्रसंग की स्मृति भी उन्हें दुखी बना देती है। वे गहरी उदासी में डूब जाते हैं। अपने टूटे हुए दिल की बात कहना भी उन्हें भारी हो जाता है।

विवाह के बाद अकेलापन उनके जीवन को मसान बना देता है। बार-बार उनके मन में यही बात आती है कि 'हमने भूल की।' पहले तो जीवन-साथी के चुनाव में भूल की और फिर उससे अलग होकर भूल की। एक भूल का उपाय दूसरी भूल नहीं हो सकती। उस भूल का सुधार सच्चे प्रयत्न से हो सकता था।

अदालत में विच्छेद का कारण 'दुर्व्यवहार' दिया जाता है। लेकिन यह मूल कारण नहीं होता। यह तो एक बहाना होता है या विच्छेद का कानूनी आधार होता है। असली कारण के लिए हमें ज़रा गहरा जाना पड़ेगा।

'दुर्व्यवहार' तो उन कारणों का परिणाम ही होता है जो प्रतिकूल विवाहों की असफलता के जनक होते हैं। प्रतिकूलता से मेरा अभिप्राय स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रतिकूलता से नहीं—बल्कि उस प्रतिकूलता से है जो उन दोनों के मन में विवाह की मूलभूत धारणाओं के प्रति होती है। वे दोनों ही विवाह के अयोग्य होते हैं। उनका मानसिक विकास अधूरा होता है। वह अभी विवाह की ज़िम्मेदारियों को निभाने योग्य नहीं होता।

सच तो यह है कि विच्छेद चाहने वाला पुरुष किसी भी स्त्री का सफल पति नहीं बन सकता और स्त्री सफल पत्नी नहीं बन सकती। इसके अपवाद हो सकते हैं। लेकिन साधारणतया यही बात सच है कि एक असफलता दूसरी सफलता की सहायक नहीं होगी। जो व्यक्ति एक बार परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है, दूसरी बार भी उसीके अनुत्तीर्ण होने का डर होगा। असफलता का बीज मनुष्य के अपने अन्दर होता है न कि परिस्थितियों में।

एक बात और स्मरणीय है। विवाहित जीवन उभयपक्षीय सहयोग का परिणाम है। उसकी असफलता भी उभयपक्षीय

कारणों से होगी। ताली एक हाथ से नहीं बजती। अनबन के लिए दोनों ज़िम्मेदार होते हैं। अपवादों को छोड़ दिया जाए तो दोनों ही समरूप से इसके दोषी होते हैं। कभी यह नहीं होता कि किन्हीं एक या दो 'दुर्व्यवहारों' से दोनों का मन टूट जाए। ये दुर्व्यवहार तो केवल सबूत के लिए पेश किए जाते हैं। इनकी पृष्ठभूमि बहुत विशाल होती है।

एक प्रत्यक्ष दुर्व्यवहार के पीछे सैकड़ों ही परोक्ष के दुर्व्यवहारों का जाल बुना होता है। उनकी गिनती नहीं हो सकती। विवाहित जीवन का सारा सरोवर ही ज़हरीले पानी से भरा दिखाई देता है। परस्पर अविश्वास, उपेक्षा, व्यंग्य-कटुता, अशिष्टता के सैकड़ों बाणों से विवाह का जीवन घायल हुआ होता है।

ये घाव ऐसे नहीं होते जो भरे न जा सकें। थोड़ी-सी सहिष्णुता से इनपर मरहम लगाई जा सकती है। लेकिन सहिष्णुता तो परिपक्व विवेक से आती है। परिपक्व प्रेम में सहिष्णुता का स्थान सबसे ऊंचा है। हम जब अपने बच्चे से प्रेम करते हैं तो उसकी सैकड़ों कमज़ोरियों को सहते हैं। उसके सैकड़ों दुष्कर्मों से भी हमारा मन मैला नहीं होता। सहिष्णुता में परिपक्व पैतृक प्रेम का अंश है। विवाहित प्रेम में भी इसीका अंश होना चाहिए। सहिष्णुता ही सच्चे प्रेम की कसौटी है। जहां परिपक्व प्रेम होगा वहां सहिष्णुता होगी और जहां केवल अन्धा उन्माद होगा वहां सहिष्णुता का स्थान ईर्ष्या ले लेगी।

पति-पत्नी का सम्बन्ध उन्माद का नहीं, प्रेम का है। उन्माद तो एक बार भभककर बुझ जाता है। प्रेम की ज्योति एक बार जलकर सदा प्रदीप्त रह सकती है—यदि उसे उपेक्षा से स्वयं बुझा न दिया जाए। अपने जीवन-साथी की उपेक्षा न करो।

उसकी आलोचना न करने या उसे विषबुझे शब्द न सुनाने में ही तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। तुम्हारा मौन उसके हृदय में प्रेम का बीज नहीं बो सकता। तुम्हें उसमें दिलचस्पी लेनी होगी। सचाई के साथ उसकी सराहना करनी होगी। केवल सचाई पर्याप्त नहीं। कुछ पत्नियां अपने पतियों को खरी-खोटी, जली-भुनी सुनाकर दावा भरती हैं कि उन्होंने सचाई से ऐसा किया। अकेली सराहना भी निष्फल होती है। उसकी निस्सारता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। लेकिन सच्चे दिल की सराहना अवश्य लक्ष्यवेध करती है। विवाहित जीवन में सच्ची सराहना के सैकड़ों अवसर आते हैं। उनका उपयोग करना चाहिए।

यह सराहना तुम्हारे साथी के हृदय में प्रेम की प्रथम किरण की तरह नया प्रकाश फैला देगी। तुम्हारे स्नेह का टिमटिमाता दीपक—जो बुझने से पहले धुंधला हो गया था—नई आभा से जगमगा उठेगा।

दो साथी जब दूर की मंज़िल के हमराही बनते हैं तो एक-दूसरे को सहारा देते हुए ही आगे बढ़ते हैं। एक थक जाता है तो दूसरा भी थोड़ी देर बैठ जाता है। दोनों की चाल एकसमान नहीं होती। एक तेज़ चलता है, दूसरा धीमे। लेकिन चलना दोनों को साथ ही है। इसलिए कदम से कदम मिलाते हुए वे आगे बढ़ते जाते हैं। दोनों के जुदा-जुदा स्वभाव हैं। एक को गाने से प्रेम है, दूसरे को प्रकृति-निरीक्षणों से। एक विनोदी स्वभाव का है, दूसरा दार्शनिक। एक वाचाल है, दूसरा मौनी। फिर भी वे साथ-साथ चलते हैं।

उनकी यात्रा में एक स्थल वह आ जाता है जब दोनों को यह अनुभव होने लगता है कि शेष सब चीज़ें गौण हैं—उनका साथ चलना ही सबसे प्रधान है। अपने रुचि-भेद को भूलकर,

स्वभाव-भेद को भूलकर वे केवल इसी संकल्प को याद रखते हैं कि उन्हें साथ-साथ जाना है।

बर्फ से घिरी पहाड़ी चोटियों पर भी वे एकसाथ चढ़े थे कुहरे से घिरी घाटियों में भी एकसाथ उतरे थे, पर्वत के शिखर से गिर-कर चट्टानों से टकराती हुई नदी का संगीत भी दोनों ने एकसाथ सुना था। देवदार के घने जंगलों में, जब केवल दो दिलों की धड़-कन ही उस सुनसान को भंग करती थी—दोनों ने साथ-साथ यात्रा की थी।

एक ही आकाश में सूर्य और चांद साथ-साथ चल रहे हैं, सन्ध्या और प्रभात के क्षण कदम से कदम मिलाते हुए अनन्त पथ की यात्रा कर रहे हैं। विभिन्नता तो उनका आकर्षण बन जाती है। अन्धकार दीपक को आंचल में रखता है और दीपक को ज्योति अंधकार के रंग को और भी प्रगाढ़ कर देती है। स्वभाव की विविधता, रुचि की भिन्नता इस यात्रा को विविध रंगों में रंग देती है। यह विविधता ही तो जीवन का शृंगार है।

स्त्री और पुरुष—दोनों में एक ही ज्योति जग रही है। सृष्टि के आदि से दोनों साथ चल रहे हैं। एक ही संगीत से दोनों हृदयों की तारें झनझना रही हैं। प्रकृति माता ने दोनों को साथ चलने के लिए एक ही पथ का पथिक बनाया है।

विच्छेद की इच्छा विनाश की सूचक है। स्वप्न में भी अल-हदा होने की कल्पना न करो। दो आत्माएं मिलकर अलग नहीं होतीं। एक बार समर्पित होकर अब स्वतन्त्र होने का अधिकार ही कहां है ?

तुम्हारा हितचिंतक

....

नया साथी

पत्र | २५

"मातृत्व में ही नारीत्व की पूर्णता है।"

प्रिय कमला,

तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि तुम्हारे जीवन में एक नये साथी का प्रवेश होने वाला है। तुम मां बनने वाली हो।

आज तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया। संसार की सबसे सुन्दर वस्तु की रचना करने जा रही हो तुम। आज तुम्हारी निर्माणप्रिय आत्मा को सच्चा संतोष हुआ। प्रकृति ने तुम्हें नई ज़िम्मेदारी का काम सौंपा है। निर्माण का कोई भी काम आसान नहीं होता। लेकिन कल्पित आशंकाओं से भयभीत न होना। कुदरत किसीको ऐसा काम नहीं देती जो उसके सामर्थ्य से बाहर हो।

प्रसवकाल की वेदना का भय अनिवार्य नहीं है। इस वेदना को आसानी से दूर किया जा सकता है। यह वेदना प्रायः उन्हीं स्त्रियों को होती है जो आजकल की बनावटी सभ्यता में रहने की अभ्यस्त हो गई हैं और प्रसव की चर्चाओं ने जिनके दिल में यह डर बैठा दिया है कि प्रसवकाल स्त्रियों के लिए दूसरा जन्म होने के समान है।

वास्तव में ऐसा नहीं है। आज भी अशिक्षित स्त्रियां बिना पीड़ा अनुभव किए बच्चे जनती हैं। उन्हें प्रसव से पहले, प्रसव के दौरान में या प्रसव के बाद किसी डाक्टर, नर्स या अस्पताल

की जरूरत नहीं पड़ती। नई गर्भवती स्त्री को सलाह देने वाली स्त्रियां इस पीड़ा का अतिरंजित वर्णन करके मन में भय पैदा कर देती हैं। प्रसव से पूर्व भय होने का परिणाम यह होता है कि गर्भाशय की स्नायुएं सिकुड़ जाती हैं और जनन-क्रिया कष्टप्रद बन जाती है। स्त्री निर्भय रहे तो यह क्रिया सहज हो जाती है। इस भय का कारण शारीरिक न होकर मानसिक अधिक है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन ही इस पीड़ा को निर्मूल कर सकते हैं।

हां, आजकल तुम्हें अपने तथा होने वाले शिशु के शरीर-निर्माण के विचार से अपने लिए उचित आहार की व्यवस्था अवश्य कर लेनी चाहिए। स्वस्थ माता ही स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है। स्वस्थ होने के लिए सन्तुलित आहार का होना परम आवश्यक है।

दूध तुम्हारे आहार का अनिवार्य भाग है। दूध में प्रायः सभी पोषक तत्त्व उचित मात्रा में मौजूद रहते हैं। जितना अधिक दूध ले सकती हो, लो। अन्न की मात्रा में कुछ कमी करके उसके स्थान पर ताज़े फल लो। उबली हुई भाजियों के साथ हरी भाजियां और सलाद भी लेती रहो। टमाटर, सन्तरे और अन्य फलों के रस भी शरीर की आंतरिक स्वच्छता के लिए आवश्यक हैं।

अपना आहार वैज्ञानिक दृष्टि से सन्तुलित करने में तुम्हारे डाक्टर तुम्हारी सहायता कर सकेंगे। आहार के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाचन ठीक प्रकार होता रहे; कोष्ठ-बद्धता या अजीर्ण की शिकायत न रहे।

प्रसव के बाद भी माता को वही आहार जारी रखना चाहिए। जब तक बच्चा अन्नाहार शुरू नहीं कर देता और स्तन-पान करता

है तब तक उसको पौष्टिक तत्त्व देने की ज़िम्मेदारी माता के ही ऊपर है। माता के पौष्टिक आहार लेने से ही उसका दूध पोषक रह सकता है।

आहार के साथ आराम की भी आवश्यकता है। प्रसव के बाद कुछ दिनों तक माता को पूरा आराम करना चाहिए। अति-व्यस्तता और मानसिक क्लेश का परिणाम यह होगा कि माता के स्तनों में दूध की कमी हो जाएगी। बहुत-सी स्त्रियों को प्रसव-काल के तुरन्त बाद घर के काम-धन्धों में लग जाना पड़ता है। घर-बाहर की अनेक चिन्ताएं उनके मन को घेर लेती हैं। जहां तक हो अनावश्यक श्रम और चिंताओं से बचना चाहिए। यह व्यस्तता माता के स्वभाव को चिड़चिड़ा बना देती है। उसका प्रभाव बच्चे के विकास पर बहुत बुरा पड़ता है।

स्तन-पान के समय भी कुछ बातें ज़रूर ध्यान में रखो। स्तन-पान लेटकर आराम से कराना चाहिए। चलते-चलते या बैठे हुए स्तन-पान कराने से पेट और कमर की नाड़ियां खिंच जाती हैं। इससे कमर-दर्द शुरू हो जाता है। स्तन-पान कराने वाली माताएं प्रायः इस दर्द की शिकार हो जाती हैं।

जितने समय तक बच्चे के लिए उचित है, उतने समय तक उसे स्तन-पान कराना चाहिए। बच्चे के लिए माता का दूध बाहर के दूध से अधिक स्वास्थ्यकर होता है। माता का दूध पूरा न हो तो पौष्टिक आहार लेकर दूध की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

'कितने अन्तर से दूध दिया जाए,' इस प्रश्न का एक ही उत्तर देना कठिन है। साधारणतया चार घंटे के अन्तर से दूध दिया जाता है। किन्तु बच्चे की ज़रूरतों को देखकर इसे कम-अधिक भी किया जा सकता है। यदि वह पहला दूध तीन घंटे में

ही हज़म कर लेता है तो वह तीन घंटे बाद ही रोना शुरू कर देगा। उसे तीन घंटे के अन्तर से दूध दिया जा सकता है। हर बच्चे की पाचन-शक्ति में अन्तर होता है। उसके अनुसार ही दूध की व्यवस्था करना उचित है।...हां, एक बार बच्चे का हाज़मा देखने के बाद और दूध देने का अन्तर निश्चित करने के बाद उसमें बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिए। समय की यह पाबन्दी बहुत ज़रूरी है। ठीक समय पर दूध न मिलने से वह अशांत हो जाता है। यह अशांति उसकी पाचन-शक्ति को भी कमज़ोर करती है। चीख-पुकार के बाद मिले दूध को पचाना उसके लिए कठिन हो जाता है।

'छोटे बच्चे यों ही रोया करते हैं।'—यह धारणा भ्रम-पूर्ण है। वे किसीको परेशान करने के लिए नहीं रोते। उस रोने में बनावट भी नहीं होती। वे तभी रोते हैं जब उनकी आवश्यकता पूरी नहीं होती या उन्हें किसी प्रकार का कष्ट मालूम होता है। वे अपनी आवश्यकता को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। रोकर ही उन्हें व्यक्त करना पड़ता है।

इसलिए बच्चे को दूध पिलाने, सुलाने और नहलाने के समयों का निश्चय करके ही माता को अपने अन्य कार्यों का क्रम बनाना चाहिए। हर बच्चे की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न हैं। उनका पता लगाना चाहिए। रोते बच्चों को मुंह बनाकर चिढ़ाना या घूरना या मार-पीटकर चुप करना उनके स्वाभाविक विकास को रोकना है। उनकी शारीरिक उन्नति में ही इससे बाधा नहीं पहुंचती, बल्कि मानसिक विकास में भी रुकावट पड़ती है।

मां का दूध न मिल सके तभी बाहरी दूध देना चाहिए। वह भी गाय का हो तो ठीक है। गाय और मां का दूध बहुत कुछ

मिलता-जुलता है। किन्तु गाय के दूध में प्रोटीन की मात्रा मां के दूध से कुछ ज़्यादा होती है इसलिए उसमें पानी मिलाकर देना चाहिए। दूध के अलावा बच्चे को विटामिन 'सी' देने के लिए सन्तरे और मौसम्बी का रस भी नित्य देना अच्छा है। बोतल द्वारा दूध पिलाते हुए बोतल की सफाई का ध्यान अवश्य रहे। और इस तरह दूध पिलाते हुए बच्चे का मुंह इसी प्रकार रहना चाहिए जैसे स्तन-पान करते समय रहता है।

बच्चा जब लगभग एक वर्ष का हो जाए तो उसके दूध की मात्रा में कुछ कमी करके अन्न और शाक आदि देना शुरू कर दो। इसमें बहुत जल्दी की आवश्यकता नहीं। पहले-पहल बच्चा अन्न से कुछ अरुचि प्रकट करता है, किन्तु बाद में दूसरों को खाता देखकर स्वयं खाना शुरू कर देता है। जहां तक हो सके आरम्भ में बच्चे को अन्न सुबह ही देना चाहिए। इससे लाभ यह होता है कि किसी कारण अन्न न पच पाया तो रात होने से पहले निकलकर पेट साफ हो जाता है। रात को कष्ट नहीं होता। एक दिन में एक ही नया अन्न देना चाहिए। इससे यह जाना जा सकता है कि कौन-सा अन्न उसके अनुकूल है, कौन-सा नहीं। अन्न की उचित मात्रा का भी पता लग जाएगा।

एक बात का ध्यान रखो। यदि बच्चे को यह पता लग जाएगा कि तुम उसके आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहती हो, तो वह भोजन के समय ही जान-बूझकर शैतान हो जाएगा। खाने के समय भी तुम्हारा व्यवहार सहज और हमेशा जैसा रहना चाहिए। खेल-खेल में ही उसके अनुकूल भोजन दे दो। वह सब काम खेल-खेल में करना चाहता है। बहुत गंभीरतापूर्वक किया काम उसकी उस काम के प्रति अरुचि बढ़ा देता है। सुलाने,

नहलाने, खिलाने या किसी भी काम के समय बहुत व्यस्तता मत प्रकट करो। हर काम को सरल-स्वाभाविक रीति से कर दो।

दांत निकलने के समय कभी-कभी स्वस्थ बच्चों को भी बड़ा कष्ट होता है। बात यह है कि दांतों को कई पौष्टिक तत्त्वों की ज़रूरत होती है। वे तत्त्व दूध, फलों के रस और काड-लिवर-आइल में होते हैं। दांतों के समय का कष्ट चिंताजनक नहीं समझना। उसकी पाचन-शक्ति ठीक रहेगी तो यह कष्ट बहुत कम हो जाएगा।

बच्चों की देखभाल करते हुए कुछ छोटी-छोटी समस्याएं भी बड़ा परेशान करने लगती हैं। उनका समाधान अपने घर की अनुभवी स्त्रियों से पूछ लेना चाहिए।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

बालक का मानसिक विकास

पत्र | २६

प्रिय कमला,

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें बच्चे के पालन-पोषण के लिए कुछ उपयोगी निर्देश दिए थे। वे प्रायः उसके खान-पान-सम्बन्धी थे। उनसे उसके शरीर का निर्माण होता है। किन्तु, शरीर तक ही उसका व्यक्तित्व सीमित नहीं है। यह अवस्था उसके मानसिक विकास की भी होती है। उसे केवल अस्थि-चर्म का बना सुन्दर खिलौना समझना बड़ी भूल है। बहुत छोटी अवस्था से ही उसकी बुद्धि विकास के मार्ग ढूंढ़ना शुरू कर देती है। आस-पास की चीज़ों व घटनाओं का प्रतिबिम्व उसके मन पर पड़ता है। और सबसे गहरी छाया पड़ती है माता के व्यवहार की। मां की चेष्टाओं का जो अक्स उसके मन पर इस अवस्था में पड़ेगा वह उसके चरित्र का स्थायी अंग बन जाएगा।

केवल बहुत अधिक देखभाल से ही उसका चरित्र नहीं बनता। यह देखभाल कई बार उसके मन को जकड़ लेती है। उसे समुचित स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिए। कभी-कभी उसे दूसरे बच्चों के साथ या स्वयं खिलौनों के साथ अकेले खेलने के लिए छोड़ दो। आरम्भ में उसे मिट्टी के खिलौने दो जिनको वह तोड़-फोड़ भी सके। तुम्हें चाहिए कि न तो तुम स्वयं उसके साथ प्यार का अनावश्यक और हर समय का प्रदर्शन करो, न अपने परिवार वालों को करने दो। बहुत अधिक लाड़-प्यार रखने या दिखाने

से बालक की उन्नति में बाधा पहुंचती है।

बच्चे खेलने के समय बहुत अधिक हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। अधिकतर वे खुद ही खेलना चाहते हैं और अपने शरीर व बुद्धि का प्रयोग करना चाहते हैं।

माताएं अपने बच्चों के शोर से तंग आकर उन्हें पीट देती हैं। बाद में पछताती हैं। पीटने का जो बुरा असर बच्चों पर होता है उसे दूर करने के लिए बाद में वे उनसे अत्यधिक लाड़-प्यार दिखलाती हैं।

माताओं का यह व्यवहार बड़ा मूर्खतापूर्ण होता है। पहले तो बेकसूर बच्चे को पीटना ही मूर्खता है। फिर यह समझना कि पिटने के बाद बच्चे में माता के प्रति प्रेम नहीं रहेगा, द्वेष की भावना जागरित हो जाएगी, मूर्खता की पराकाष्ठा है।

बच्चों में भी असली प्रेम को समझने की विवेक-बुद्धि होती है। यदि तुम उन्हें पीटने के कुछ देर बाद शब्दों से प्रेम प्रकट कर दो तो वे तुम्हारे कटु व्यवहार को भूलकर तुमसे पहले जैसा प्यार करने लगेंगे। बच्चों का विश्वास तुम्हारी एक-दो भूलों से दूर नहीं हो जाएगा। अतः तुम्हें इस बारे में बहुत चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम अपने पर नियन्त्रण न रख सको और बच्चों को पीट भी दो तो उसका पछतावा न करके उस घटना को तुरन्त भूल जाओ।

कुछ माताओं को यह शिकायत होती है कि उनका बच्चा कहना नहीं मानता। वह घर में और सबका कहना मान लेता है—केवल मां का नहीं मानता। कारण यह है कि कई बार मां का व्यवहार बड़ा अप्रीतिकर हो जाता है। इसका निदान उसे अपनी मानसिक स्थिति में ढूंढ़ना चाहिए। अपनी चिन्ताओं में

व्यस्त माताएं अपने मन का बुखार बच्चों पर उतारती हैं। माता का दुर्व्यवहार बच्चे के मन से माता का प्रेम और सम्मान नष्ट कर देता है। यह समझना भूल है कि तुम्हारी गोद में तुम्हारे दूध से पला होने के कारण ही वह उम्र-भर तुम्हारी गालियों को मीठी बातें मानता रहेगा। तुम्हारे पिछले उपकारों से दबकर भी वह तुमसे प्रेम नहीं कर सकता, बल्कि उन उपकारों को वह भार समझने लगेगा। प्रेम का प्रतिदान तो प्रेम के ही उत्तर में मिलता है। उसकी उपेक्षा का कारण समझकर उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करो। तभी वह तुम्हारा कहना मानेगा। बच्चे उसीका कहना मानते हैं जिससे प्रेम करते हैं। अनुशासन से नहीं—प्रेम से ही तुम उन्हें अपना आज्ञाकारी बना सकती हो।

आम तौर पर माताओं को यह शिकायत रहती है कि वे अपने बच्चों के खाने, पीने, सोने, नहाने आदि को नियमित रखने का पूरा ध्यान रखती हैं, फिर भी उनके बच्चे रोते रहते हैं। ज़रा-सी बात पर, अथवा किसी भी वस्तु की आवश्यकता होते ही वे चीखकर रोना शुरू कर देते हैं।

इस आदत का एक ही इलाज है। रोने के असली कारण का पता लगाकर उसका निवारण करो। और यदि वह निष्कारण रोता है तो उसके रोने की धमकी में न आओ। बहुत-से बच्चे रोने को अपनी बात पूरी कराने का हथियार बना लेते हैं। उचित-अनुचित का विवेक बच्चों को नहीं होता। बच्चों को चुप कराने के लिए जो माता-पिता उनकी अनुचित मांग को पूरा करते हैं वे बच्चों का भविष्य बिगाड़ते हैं। भविष्य में उनकी मनोवृत्ति में स्वार्थ का विष कूट-कूटकर भर जाता है। मनमानी इच्छा पूरी न होने पर बहुत जल्दी हार मानने की निर्बलता उनके मन में

घर कर जाती है। हर बात पर रो देते हैं—जीवन के आघात-प्रत्याघातों को सहने की क्षमता नहीं रहती। इसलिए माता-पिता को न तो अनुशासन की ही अधिकता करनी चाहिए और न ही लाड़-प्यार की। माता-पिता का व्यवहार ही बच्चे के चरित्र को बनाता है। उनकी लापरवाही बच्चे के लिए घातक है। खूब सोच-समझकर बच्चे की मानसिक दशा का अध्ययन करते हुए माता-पिता को अपने व्यवहार का निश्चय करना चाहिए।

पांच वर्ष की उम्र होने तक बच्चे की जिज्ञासा बहुत बढ़ जाती है। उसके कौतूहल की सीमा नहीं रहती। वह अपनी प्रश्नावली से माता-पिता को परेशान कर देता है। साधारणतया माता-पिता चुप रहकर उन प्रश्नों को टाल देते हैं। यह चुप्पी ठीक नहीं। बच्चों के प्रश्नों को ध्यान से सुनना चाहिए और यथाशक्ति उनका उत्तर देकर बच्चों को सन्तुष्ट करना चाहिए। उत्तर सीधे और सच्चे होने चाहिए। बच्चों के साथ झूठ बोलना बुरा है। यदि तुम उसके प्रश्न का उत्तर नहीं जानतीं तो साफ कह दो, 'मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानती।' तुम यह भी कह सकती हो कि 'जब तुम पढ़ने लगोगे तो इसका उत्तर तुम्हें पुस्तक में मिल जाएगा।' इस उत्तर का प्रभाव बच्चे पर यह होता है कि वह बड़ी उत्सुकता से अपने शिक्षा-काल की प्रतीक्षा करने लगता है और पुस्तकों में दिलचस्पी लेने लगता है।

बच्चे को धोखा देने का यत्न मत करो। उसे झूठे बहकावों में मत लाओ। सचाई से सारी स्थिति समझा दो। उसमें कष्टों को सहने की शक्ति भी है; धीरज भी है। उसके घाव पर यदि तुम नश्तर लगाना चाहती हो तो उसे समझा दो कि नश्तर लगाने से उसे थोड़ा दर्द ज़रूर होगा—लेकिन उसका घाव ठीक हो

जाएगा। हम लोग उसकी नज़र दूसरी ओर घुमाकर अचानक नश्तर चुभो देते हैं। इस अचानक आक्रमण से बच्चा अविश्वास करने लगता है। मिठाई का लालच देकर हम उसकी बांह में सूई लगा देते हैं। नतीजा यह होता है कि वह मां-बाप को चालबाज़ समझने लगता है। बच्चे को जब ज्वर होता है तो मां-बाप झूठा आश्वासन शुरू कर देते हैं कि 'शाम तक ठीक हो जाएगा।' उनका आश्वासन जब झूठा साबित होता है तो बच्चे की माता-पिता के प्रति श्रद्धा में बड़ा आघात पहुंचता है। अच्छा यही है कि पहले ही उसे कह दिया जाए कि 'इस ज्वर में उसे तीन-चार दिन बिस्तर पर लेटना होगा।' तब वह तीन-चार दिन बिस्तर पर लेटने का मन बना लेता है और शान्ति व धीरज से कष्ट के दिन गुज़ार लेता है।

कई माताएं अपने बच्चों की गुलाम बनकर उन्हें कभी अपने पैरों पर खड़ा नहीं होने देतीं। बड़े होने पर भी वे बच्चे दूसरों से ही अपने काम करवाने के आदी हो जाते हैं। बच्चा जब स्कूल जाने की उम्र में आ जाए तो उसे अपने कपड़े स्वयं संभालने, या स्वच्छ रहने की आदत डालनी चाहिए। बहुत लाड़-प्यार में माताएं स्वयं उनके कपड़े संभालती हैं और नहलाती-धुलाती रहती हैं। परिणाम यह होता है कि उनको अपना काम अपने हाथों से करना नहीं आता। उनमें आत्मविश्वास, कौशल और दृढ़ता की कमी रह जाती है। ये गुण उनमें विकसित ही नहीं हो पाते।

कुछ माताएं तो अत्यधिक प्रेम के वश बच्चों को अपने पैरों आप खड़ा होने का सबक नहीं देतीं और कुछ ऐसी होती हैं जो बच्चों के अभ्यास-काल में भी घर की यत्किंचित् अव्यवस्था को सहन नहीं कर सकतीं। वे बच्चे की भूल का स्वयं सुधार कर

देती हैं। बच्चे को सुधार करने का अवसर ही नहीं देतीं। उन्हें याद रखना चाहिए कि सीखने के समय बच्चा भूलें भी करेगा। उसके ट्रंक में कुछ कपड़े अस्तव्यस्त भी रहेंगे और उसका बिस्तर उलट-पलट भी रहेगा। लेकिन 'घर की शोभा न बिगड़ जाए', इस डर से अगर तुम स्वयं सब संवार दोगी तो बच्चे को सीखने का अवसर नहीं मिलेगा।

एक क्षण के लिए भी घर की सजधज न बिगड़े—गृहिणी की यह महत्त्वाकांक्षा बच्चे के भविष्य को बिगाड़ देती है। ऐसी माताएं बच्चे को अपने हाथों अपना काम करने की आज़ादी नहीं देतीं। अच्छा यह है कि कुछ दिन भले ही घर की सजधज बिगड़ जाए, घर में अस्तव्यस्तता रहे, बच्चे की स्वच्छता में कमी आ जाए, किन्तु बच्चा अपने हाथों अपना काम करना सीख जाए। यह शिक्षा बच्चों को घर में ही मिल सकती है। घर को केवल अपनी आरामगाह नहीं बल्कि बच्चों की प्रयोगशाला समझना चाहिए।

रिश्तेदारों का हस्तक्षेप भी बहुत बार बच्चों के मानसिक संतुलन को बिगाड़ देता है। हमारे घरों में प्रायः रिश्तेदारों के आने का तांता लगा रहता है। इससे बच्चे के सोने, खेलने और खाने के कार्यक्रम में तो बाधा पड़ती ही है, साथ ही वह बेकाबू भी हो जाता है। मां-बाप के सामने जिन शरारतों के करने से वह डरता है उन्हें ही वह रिश्तेदारों के सामने करने लगता है। वह जानता है कि उस समय उसके माता-पिता धमकाएंगे नहीं। आने-जाने वाले रिश्तेदार प्रायः माता से बड़ी उम्र में होते हैं इसलिए वह उनके सामने चुप रहती है। मन ही मन कुढ़ती है—लेकिन कुछ कह नहीं सकती।

यह चुप्पी तुम्हें तोड़नी होगी। तुम्हें रिश्तेदारों को सुझाना होगा कि उनके अनुचित प्रेम-प्रदर्शन से बच्चे का स्वभाव बिगड़ता है। वे तुम्हारे सुझाव को पसन्द करेंगे और अपने व्यवहार को बदल लेंगे।

यह नहीं समझना चाहिए कि बच्चा नियन्त्रण को बिल्कुल पसन्द नहीं करेगा। उसमें भी नियन्त्रण को अच्छा समझने की बुद्धि है। रिश्तेदारों के असंयत और अतिशय प्रेम-प्रदर्शन की अपेक्षा वह मां-बाप के अनुशासन-मिश्रित प्रेम का आदर करेगा। बच्चे में इतना विवेक होता है।

बालकों के खिलाने, सुलाने तथा अन्य कामों के जो नियम बताए जाते हैं वे सुझाव के तौर पर होते हैं। उनका अन्धपालन नहीं किया जा सकता। सब बच्चे एक-सी प्रकृति और स्वास्थ्य के नहीं होते हैं।

यदि किसी बच्चे को दिन में ज्यादा नींद आती है और रात में कम या उसे दूध के स्थान पर अन्न से अधिक रुचि है तो माता-पिता को जबर्दस्ती अपने आदर्श नियमों का बच्चे से पालन करानें में हठ नहीं करना चाहिए। बच्चे की रुचि के अनुसार दिनचर्या बदल देनी चाहिए; अपने नियम स्वयं बना लेने चाहिए।

बच्चा कोई मशीन नहीं है जिसको सिर्फ ठीक समय पर ठीक खाना खिलाकर या ठीक समय पर ठीक घण्टों के लिए आराम कराकर समझ लिया जाए कि देख-रेख हो गई। छोटे से छोटे बालक का भी अपना व्यक्तित्व होता है। उसके व्यक्तित्व का माता-पिता को उतना ही आदर करना चाहिए जितना वे अपने व्यक्तित्व का करते हैं। बच्चे को प्रारम्भ से ही विशेष व्यक्ति मानकर चलना चाहिए। हर बालक दूसरे बालकों से निराला

होता है। उसके नियम भी निराले ही होने चाहिए।

सब बालकों की आवश्यकताएं और विचार-शक्ति एक-समान नहीं होती। कुछ बालक बात को अविलम्ब समझ लेते हैं और कुछ के मस्तिष्क में नई बात बिठाना सूई की नोक में से ऊंट गुज़ारने के बराबर कठिन हो जाता है। उन दोनों विभिन्न स्वभाव के बालकों को एक ही लाठी से हांकना और दोनों को एक ही दिनचर्या की डोर में बांधना अन्याय है।

बालकों के संगोपन और शिक्षण का काम बड़े दायित्व का काम है। माता-पिता को अपने बालक के जीवन के साथ खिल-वाड़ करने का अधिकार नहीं है। कोई भी परीक्षण करने से पूर्व बालक की मानसिक स्थिति का पूरा अध्ययन कर लेना चाहिए। अमुक नियम क्यों अच्छा है, उसका पालन करना तुम्हारे बालक के लिए लाभप्रद है—यह विचार करके ही उसके पालन पर बल देना चाहिए। आवश्यक हो तो उसमें सुधार भी कर लेना अच्छा है।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

बच्चों के कुछ मनोविकार

पत्र | २७

- हीन भावना से बचाव;
- बालक माता-पिता का प्रतिबिम्ब;
- झूठ बोलने की आदत।

प्रिय कमला,

बच्चों की दुनिया सीधी-सरल होती है। उनकी मनोभावनाएं भी प्राय: स्वाभाविक और जल्दी समझ में आने वाली होती हैं। उनका सब कुछ प्रकट होता है। उनमें प्राय: ऐसी ग्रन्थियां नहीं होतीं जो परोक्ष रूप से उनके व्यवहार पर प्रभाव डालती हों।

यह बात सच है किन्तु सर्वांश में सच नहीं। उनकी चेष्टाएं भी कई बार बहुत छिपे कारणों से प्रभावित होती रहती हैं। मैं एक गृहिणी को जानता हूं जिसे अपनी पांच साल की लड़की से यह शिकायत है कि वह अपने छ:-सात महीने के भाई से तीव्र घृणा करती है। यह घृणा नहीं, ईर्ष्या है। नये बालक के जन्म के बाद माता-पिता का ध्यान उसकी ओर से हटकर छोटे बालक की ओर चला गया। वह पहले की तरह ही मां-बाप के प्रेम पर पूरा स्वत्व चाहती है। नवागन्तुक बालक ने ही उसके स्वत्व को छीना है—इसलिए वह उससे ईर्ष्या करती है।

कई बार ऐसा होता है कि ईर्ष्यालु बच्चे बड़े होकर भी नये सिरे से छोटे बच्चों की तरह चेष्टाएं करने लगते हैं—अंगूठा चूसने

लगते हैं और बहुत रोने-मचलने की आदत डाल लेते हैं। वस्तुतः वे अब भी अपने को छोटा बच्चा जतलाकर मां-बाप से वही प्रेम चाहते हैं जो वे पहले केवल उसे ही देते थे और अब छोटे बच्चे को देने लगे हैं।

ऐसी स्थिति में माता-पिता को धीरज से काम लेना चाहिए। बड़े बच्चे के दिल में छोटे के लिए गहरा अपनापन जागरित करना चाहिए। उसे कहना होगा कि इस नये बालक की रक्षा का और उसे प्रेम करने का काम उसका ही है। उसकी बचपन की सब इच्छाओं को पूरा करने की ज़रूरत तो नहीं, किन्तु कुछ इच्छाओं को अवश्य पूरा करो। उसे विश्वास दिलाना होगा कि अब भी वह पहले की तरह अपने मां-बाप का लाड़ला है। उसके भाई ने उसके अधिकार में से कुछ भी छीना नहीं।

कई घरों में ऐसा होता है कि छोटे भाई को उत्साह देने के लिए बड़े को बार-बार कम समझदार कहा जाता है। बार-बार यही बात सुनकर बड़ा भाई सचमुच आलसी और मन्दबुद्धि बन जाता है। उसमें हीन भावना पैदा हो जाती है। वह मन ही मन छोटे भाई से ईर्ष्या करने लगता है। दिल ही दिल में उसके जलन-सी होती रहती है। उसे वह व्यक्त नहीं कर सकता। इसलिए चुप-चाप चिढ़ता रहता है और अलग खिंचा-सा रहता है।

जो माता-पिता इस तरह एक-दूसरे भाई की तुलना किया करते हैं वे दोनों में विद्वेष की चिनगारियां छोड़ने के दोषी होते हैं। चाहिए यह कि जिसमें जितनी योग्यता है उसका आदर किया जाए। कोई निर्बल है तो उसे सहायता दी जाए। किसीकी निर्बलता को उपहास का विषय बनाना उसके लिए घातक है।

हमारे परिवारों में जो विषमता दिखाई देती है उसका प्रधान

कारण यही है कि घर के लोग जब मिलकर बैठते हैं तो भाई-बहनों की तुलना में ही सारी प्रतिभा खर्च कर देते हैं। वे समझते हैं कि घर बैठकर बच्चों की आलोचना करने में कोई बुराई नहीं है। उनका यह भी विश्वास होता है कि इस आलोचना से आलोचित व्यक्ति को प्रोत्साहन मिलेगा। यह विश्वास भ्रममूलक है। उसका असर कभी अच्छा नहीं होता।

बच्चे की शिक्षा के समय माता-पिता को अपनी आदतें सुधारने का भी ध्यान रखना चाहिए। बच्चों में नकल की भावना बहुत तेज़ होती है। उन्हें अच्छे-बुरे का कोई विचार नहीं होता। वे तो जो देखते हैं उसकी नकल शुरू कर देते हैं। यदि तुम चाहो तो अपने बच्चे की नकल करने की आदत का सदुपयोग अपने आचरण को आदर्श बनाकर कर सकते हो। मगर, इसके लिए तुम्हें कठिन प्रयत्न करने पड़ेंगे।

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा क्रोध न करे तो पहले तुम्हें अपने क्रोधी स्वभाव पर विजय पानी होगी। माता-पिता खुद तो तुनक-मिज़ाज होते हैं, बात-बात में आग-बबूला हो जाते हैं, नौकर पर हाथ उठाते हैं, चीज़ें तोड़ने लगते हैं, बच्चे की हड्डी-पसली तोड़ने पर उतारू हो जाते हैं—लेकिन बच्चों से यह आशा रखते हैं कि वे सौजन्य के अवतार होंगे।

मां अगर पीठ-पीछे बच्चे के पिता की निन्दा करेगी तो बच्चा कभी परनिन्दा के दोष से मुक्त नहीं हो सकता। वह आदत उसके खून में समा जाएगी। क्रोधी स्वभाव के माता-पिता की सन्तान विनम्र नहीं बन सकती। विषय-भोग में ग्रस्त मां-बाप अपना ज़हर बच्चों में अवश्य भर देंगे। बच्चों की निरीक्षण-शक्ति बहुत तेज़ होती है। मां-बाप द्वारा उनकी आंखों में धूल

झांकने का प्रयत्न भूल है। वे अपने माता-पिता के मन की बातों को भी पहचानते हैं। पहचानते ही नहीं—अपना भी लेते हैं।

शाब्दिक उपदेशों का प्रभाव उनके मन पर नहीं पड़ता। माता-पिता का जीवन ही उनपर प्रभाव डाल सकता है। इस ज़िम्मेदारी को समझकर ही माता-पिता को अपने आचरणों का निरूपण करना चाहिए। अपने लिए नहीं तो अपने बच्चों के लिए उन्हें सुधरना चाहिए।

बच्चे दो कारणों से झूठ बोलते हैं : (१) सच बोलने के परिणाम से बचने के कारण ; और (२) सच बोलने की दोषपूर्ण शिक्षा के कारण। सच बोलने के कारण बालक को जब सज़ा भुगतनी पड़े तब वह सच नहीं बोलता। उसमें यह विश्वास पैदा करना चाहिए कि अपराध स्वीकार करने पर भी उसे भयंकर दंड नहीं दिया जाएगा। दंड देकर बालकों को सुधारने का उपाय बहुत दोषपूर्ण है। दंड देकर माता-पिता केवल अपने क्रोध का निराकरण करते हैं। दंड की भावना सुधार की भावना नहीं है। सुधार सदैव प्रेम से होता है। दंड देकर मात-पिता बच्चे में स्वयं झूठ बोलने की आदत डालते हैं।

मान लो, तुम बालक को कुछ पैसे देते हो, और वह उन्हें खो देता है। तुम्हारे पूछने पर वह पैसों के खो जाने की सचाई को स्वीकार कर लेता है। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसे पैसे खोने के अपराध का दंड न देकर उसके सच बोलने की कद्र करो और प्रेमपूर्वक समझा दो कि पैसा खोना कितना बुरा है। कुछ थोड़े-से पैसों की हानि इतनी चिन्तनीय नहीं जितनी झूठ बोलने की आदत। सच बात कहकर भी जब वह दण्डित नहीं होगा तो वह सच कहने से नहीं डरेगा। उसे झूठ बोलने की आदत नहीं

पड़ेगी। हर बात का उत्तर देने से पूर्व वह सच-झूठ का परिणाम नहीं सोचेगा। सच कहने में उसे कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

मार-पीटकर बच्चों से सच कहलवाने का कोई लाभ नहीं होता। इस तरह बच्चे मार-पीट से बचने का इलाज ढूंढ़ लेते हैं लेकिन सच बोलना प्रारम्भ नहीं करते। बल्कि अपने झूठ को सच बनाने के लिए सैकड़ों झूठों का आविष्कार करने लगते हैं। इस आविष्कार में उन्हें आनन्द अनुभव होने लगता है। माता-पिता और बच्चों में सदा संघर्ष चलता रहता है। हार माता-पिता की ही होती है। वे अपने बालक के असत्य के आविष्कार की प्रखर प्रतिभा से पराजित हो जाते हैं और अन्त में इतने हताश और हतप्रभ हो जाते हैं कि बालक के भविष्य-निर्माण में रुचि लेना ही छोड़ देते हैं।

निश्चेष्टता भी बहुत बार बच्चों के मन में विकार पैदा कर देती है। निष्क्रिय मन शैतान का घर होता है। निष्क्रियता बच्चे के मन में उत्पात-उपद्रव करने की प्रवृत्ति को जागरित कर देती है। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे बच्चे को निष्क्रिय न रहने दें। स्कूल के समय के अतिरिक्त भी बच्चे के पास बहुत अवकाश रहता है, विशेषत: लम्बी छुट्टियों के अवसर पर। उस समय का सदुपयोग होना आवश्यक है। घर में कुछ घरेलू खेलों का सामान रखना उचित है। माता-पिता को स्वयं बालक के साथ खेलना चाहिए। बच्चे को नये मित्र बनाने की भी प्रेरणा देते रहना उचित है। हर उपाय से उसकी छुट्टी के समय को विविधतापूर्ण और व्यस्त बनाने का यत्न करो।

तुम्हारा हितचिन्तक

....

सत्यकाम ि

हिन्दी के पुराने
सत्यकाम विद्यालंकार क
पत्रकारों में है। आप
पर शैली आज नयों के
है। आयु के ५२ वर्षों
प्रोज्ज्वल ही किया है।

उनकी कला एक ही क्षेत्र के दायरे में बंधकर नहीं रह गई, सब दायरों से ऊंचा उठकर वह अपनी मौलिकता सुरक्षित रख स

आप गुरुकुल कांगड़ी के उन स्नातकों में हैं जिन्होंने हिन्दी कारिता को नवीन संस्कार देकर यशोपार्जन ही नहीं किया, बल्कि अनेक पुस्तकों द्वारा हिन्दी साहित्य की भी श्री-वृद्धि

पत्रकार का अत्यन्त व्यस्त जीवन बिताते हुए आपने 'चा निर्माण', 'जीवन-साथी', 'मानसिक शक्ति के चमत्कार', 'राष्ट्रपु 'वेदगीतांजलि', 'सोमा' जैसी स्थायी मूल्य की पुस्तकें लिखी हैं। आपने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद भी किया है। हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक 'धर्मयुग' के आप सम्पादक रह चुके हैं। सम्प्रति आप 'नवनीत' के सम्पादक हैं।

○○○